गांधी जन्म-शताब्दी प्रकाशन

यह तो सार्वजनिक पैसा है

गांधीजी के जीवन के प्रेरणादायक प्रसंग

•

सम्पादक
विष्णु प्रभाकर

•

१९७०
गांधी स्मारक निधि
सस्ता साहित्य मंडल
का संयुक्त प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

पहली बार : १९७०
मूल्य
एक रुपया

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस,
क्वींस रोड, दिल्ली-६

राष्ट्रीय गांधी जन्म-शताब्दी समिति

श्री रगनाथ रामचद्र दिवाकर की अध्यक्षता मे समिति की प्रकाशन सलाहकार समिति के तत्त्वावधान मे 'गाधी स्मारक निधि' के द्वारा 'सस्ता साहित्य मडल' के सहयोग से यह पुस्तकमाला प्रकाशित कराई जा रही है।

१, राजघाट कालोनी,
नई दिल्ली

—देवेन्द्रकुमार गुप्त
संगठन मंत्री
राष्ट्रीय गाधी जन्म शताब्दी
समिति

प्रकाशकीय

महात्मा गाधी के जीवन के लोकोपयोगी प्रसगो की इस पुस्तक-माला की छ पुस्तके पाठको के हाथो मे पहुच चुकी हैं। सातवी पहुच रही है। इन तथा आगे की अन्य पुस्तको मे गाधीजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालनेवाले प्रसग दिये गए है।

इन पुस्तको की सामग्री अनेक पुस्तको मे से चुनकर ली गई। उन पुस्तको तथा उनके लेखको के नाम प्रत्येक पुस्तक के अन्त मे दे दिये गए हैं। इन प्रसगो की भाषा को अधिकाधिक परिमार्जित कर दिया गया है। यह कार्य श्री विष्णु प्रभाकर ने किया है। वह हिन्दी के जाने-माने कथाकार तथा नाटककार है। उन्होने हिन्दी की अनेक विधाओ को समृद्ध किया है। इन पुस्तको की भाषा को अपनी कुशल लेखनी से उन्होने न केवल सरस बनाया है, अपितु उसे सुगठित भी कर दिया है। इसके लिए हम उनके आभारी हैं।

अत्यन्त व्यस्त होते हुए भी श्री दिवाकरजी ने इस पुस्तक-माला की भूमिका लिख देने की कृपा की, तदर्थ हम उनके अनुग्रहीत हैं।

पुस्तक का मूल्य इतना कम रखने के लिए निधि द्वारा आशिक आर्थिक सहायता दी जा रही है।

हमे पूरा विश्वास है कि इन पुस्तको का सभी वर्गो तथा क्षेत्रो मे हार्दिक स्वागत होगा और इनका देश-व्यापी ही नही, विश्व-व्यापी प्रचार भी।

—मत्री

भूमिका

जो बात उपदेशो के बड़े-बडे पोथे नही समझा सकते, वह उन उपदेशों मे से किसी एक को भी जीवन मे उतारने के समझ मे आ जाती है। इसलिए गाधीजी कहते थे कि मेरा जीवन ही मेरा सन्देश है। उनके जीवन का यह सन्देश उनके दैनन्दिन जीवन की घटनाओ मे प्रदर्शित और प्रकाशित होता है।

ससार के तिमिर का नाश करने के लिए मानव-इतिहास मे जो व्यक्ति प्रकाश-पुज की भाति आते है उनका सारा जीवन ही सत्य और ज्ञान से प्रकाशित रहता है। गाधीजी के जीवन मे यह बात साफ दिखाई देती है। इस पुस्तक-माला मे गाधीजी के जीवन के चुने हुए प्रसगो का सकलन करने का प्रयास किया गया है। उनका प्रकाश काल के साथ मन्द नही पड़ता। वे क्षण मे चिरन्तन के जीवन के किसी पहलू को प्रदर्शित करते है। उनकी प्रेरणा स्थानीय न होकर विश्वव्यापी है।

ये प्रसग गाधीजी के जीवन से सम्वन्धित प्राय सभी पुस्तको के अध्ययन के वाद तैयार किये गए है। हर प्रसग की प्रामाणिकता की पूरी तरह रक्षा की गई है। फिर भी वे अपने आपमे सम्पूर्ण और मौलिक है।

यह पुस्तक-माला अधिक-से-अधिक हाथो मे पहुचे तथा भारत की सभी भाषाओ मे ही नही, वरन् ससार की अन्य भाषाओ मे भी इसका अनुवाद हो, ऐसी अपेक्षा है। मैं आशा करता हूं कि गाधी-जन्म-शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित यह पुस्तक-माला अपनी प्रभा से अनगिनत लोगो के जीवन को प्रेरित और प्रकाशित करेगी।

रंगनाथ दिवाकर

विषय-सूची

यह तो
सार्वजनिक पैसा है

●

यह तो सार्वजनिक पैसा है

सुप्रसिद्ध हरिजन-यात्रा के समय गांधीजी हरिजन फण्ड के लिए चन्दा इकट्ठा किया करते थे। दिन-भर जो राशि प्राप्त होती थी, उसे रात में बैठकर उनके निजी सचिव गिनते थे और हिसाब करते थे। एक दिन क्या हुआ कि एक हजार दो रुपये कम निकले। जैसे-जैसे पैसा मिलता जाता था, उसे महादेव देसाई एक कागज पर लिखते जाते थे। बार-बार उसे जोड़ा-जांचा, लेकिन गलती का पता नही लगा। पाच सौ एक, पाच सौ एक की दो थैलियां दिन मे मिली थी, वे ही इस समय नही मिल रही थी। कोई उन्हे लेकर चम्पत हो गया था। कौन ले गया था, इसका पता लगाना बड़ा कठिन था। महादेवभाई दुखी हो उठे।

तभी एक बन्धु ने जाकर गांधीजी को इस बात की सूचना दी। उन्होने सुना और मौन रहे। तब उन भाई ने फिर पूछा, "अब इन रुपयों का क्या होगा।"

बिना किसी झिझक के गाधीजी ने उत्तर दिया, "होगा क्या! महादेव को अपनी जेब से भरना होगा। यह तो सार्वजनिक पैसा है।"

और सचमुच महादेवभाई को अपनी व्यक्तिगत आय मे से यह रकम भरनी पडी।

आप लोगों की मुक्ति का समय समीप आ गया है

दक्षिण अफ्रीका से लौटते समय सन् १६१४ के अन्त में गांधीजी इग्लैण्ड गये थे, तभी उनकी भेट विख्यात पत्रकार सत निहालसिह से हुई थी। ठीक समय पर जब सन्त निहालसिह अपनी पत्नी-सहित गाधीजी से मिलने उनके निवास-स्थान पर पहुचे, तो गाधीजी घर पर नही थे। एक मित्र ने उन्हे सूचना दी, "गाधीजी को वाहर जाना पड़ा है। वह बीमार थे, परन्तु कुछ ऐसी कठिनाइया आ उपस्थित हुई, जो उनके गये बिना दूर नही हो सकती थी। वह मोटर द्वारा गये है और शीघ्र ही लौट आयगे। तबतक आप श्रीमती गांधी से बातचीत कर सकते है।"

कस्तूरबा उस समय गाधीजी के लिए भोजन तैयार कर रही थी। काफी देर तक वे लोग बात करते रहे। तभी गांधीजी वहा आ गये। बोले, "मुझे भय लग रहा था, कही आप लोग प्रतीक्षा करते-करते थककर चले न जायं। मुझे आप दोनो से मिलने की बड़ी इच्छा थी। हा, यदि मैं बिस्तर पर लेटे-लेटे बाते करू, तो आप लोग बुरा तो न मानेगे ?"

वह सचमुच बहुत दुर्बल हो रहे थे। श्री सिह ने कहा, "आप लेट जाइये। मै फिर कभी ऐसे मौके पर आ सकता हूं जब आप खूब स्वस्थ होगे।"

गाधीजी बोले, "जब आपसे भेट हुई है, तो आपसे बिना बाते

किये न जाने दूगा।"

और वह, जो मात्र हड्डियों का ढांचा दिखाई दे रहे थे, तुरन्त बात करने में लीन हो गये। वह शब्दों के लिए एक बार भी नही रुके, यहांतक कि तारीखे और नाम तक, जिनका मौके पर उल्लेख करने के लिए सदा याद रखना सरल नही होता, उनके होंठों से झर आते थे।

बीच-बीच में श्री सिह ने बातचीत बन्द करने का प्रस्ताव किया। कहा, "गांधीजी, यद्यपि यह बातचीत मनोरजक है, तथापि मै आपके शरीर को अनुचित श्रम से बचाना चाहता हूं।"

गांधीजी मुस्कराये। बोले, "इतने वर्षो के बाद मै आज आपको पकड़ सका हूं। इतनी जल्दी मै आपको कैसे जाने दे सकता हू!"

और श्री सिह की पत्नी के कहने पर भी उन्होंने उन्हे जाने नही दिया। वह एक बार जो बात निश्चित कर लेते थे, वह अटल होती थी। उनका भोजन बहुत सूक्ष्म था। श्री सिह की पत्नी ने उन्हें पौष्टिक भोजन, विशेषकर दूध लेने का सुझाव दिया, लेकिन उन्होंने तर्क द्वारा प्रमाणित कर दिया कि दूध भी मांस का ही अंग है। बोले, "चाहे मैं ऐसा भले ही दिखाई देता हू कि मैं भूखों मर रहा हूं, परन्तु मैं पर्याप्त से अधिक पौष्टिक भोजन ग्रहण करता हूं। कम अच्छा भोजन करने के सम्बन्ध मे मै आपकी सहानुभूति का अधिकारी नही हूं।"

और यह कहते-कहते उनकी आंखे प्रसन्नता से चमक उठी। श्री सिह आश्चर्य से उनकी ओर देखते रह गये। उन्हे लगा, इस व्यक्ति के भीतर कोई ऐसी वस्तु अवश्य है, जो आंखों से नही

दिखाई देती, लेकिन इनको परिपुष्ट किये रहती है।

गाधीजी देर तक भोजन-विज्ञान की चर्चा करते रहे। उसके बाद श्री सिह ने दक्षिण अफ्रीका की चर्चा छेड दी। बातचीत का प्रवाह तुरन्त उसी ओर बह चला। पता ही नही चला कि कितना समय बीत गया। तभी अचानक एक भारतीय महिला वहा आई। उन्हे तुरन्त भीतर बुला लिया गया। उनके पति श्री निर्मलचन्द्र सेन इण्डिया आफिस मे नौकर थे। उस समय गाधी जी ने श्री सिह से कहा, "आप लोगो की मुक्ति का समय समीप आ गया है। मै इनसे बगाली पढता हू।"

श्री सिह और भी चकित हुए। बीमार होते हुए भी गाधीजी अपने साथ इतना अन्याय क्यो करते है ? लेकिन तभी उन्हे पता लगा कि गाधीजी भारत पहुचने के बाद बगाल जायगे। उन्होने कहा, "मेरी इच्छा है कि मै कविवर से उनकी मातृभाषा मे ही बातचीत करने योग्य हो जाऊ।"

गुरुदेव के प्रति गाधीजी की ऐसी भक्ति और प्रेम देखकर श्री सिह और उनकी पत्नी बहुत प्रभावित हुए और तुरन्त उनकी अनुमति लेकर वहा से चले गये। लेकिन तबतक वे गाधीजी के परम भक्त बन चुके थे।

यहां कोई अछूत है क्या ?

सौराष्ट्र के एक गाव की एक सभा में बोलते हुए गाधीजी ने अस्पृश्यता के प्रश्न की चर्चा भी की। लेकिन वह यही नही रुक गये। अन्त में पूछा, "यहां कोई अछूत है क्या ?"

उत्तर मिला, "जीहां, है। वे उस किनारे पर बैठे हुए है।"

गाधीजी के सामने फल और सूखे मेवों से भरा एक थाल रखा हुआ था। उसीकी ओर इशारा करते हुए बोले, "इसे उन बच्चों मे बांट दो, मेरी तरफ से नही, अपनी ओर से। अपने प्रेम और इस बात की निशानी के तौर पर कि आप उनके प्रति अच्छा व्यवहार करना चाहते हैं बांट दीजिए।"

एक सवर्ण व्यक्ति ने कहा, "क्या मुझे प्रसाद के तौर पर थोड़ा-सा नही मिल सकता ? मै आपका शिष्य हूं।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "तुम फूल ले जा सकते हो। फल और मेवा तो अछूतो के लिए ही है।"

तबतक अछूतों के बच्चे उस किनारे से गाधीजी के पास आ गये थे। सभा में कुछ खलबली-सी मची। कुछ बूढ़ों ने कहा, "गांव में कलयुग आगया है, कलयुग।"

लेकिन किसीने गाधीजी का विरोध नही किया और उनको विदा करते समय उल्लास की कमी भी उन्होंने नही दिखाई।

मेरे विचारों को मानता कौन है ?

गाधीजी से मिलने के लिए असख्य व्यक्ति सदा लालायित रहते थे। उस समय भी जब वह विहार मे फैली हुई साम्प्रदायिक आग को शात करते हुए घूम रहे थे तब भी मिलनेवालो की संख्या में कोई कमी नही हुई। उस दिन शाम को दो अंग्रेज बहने मिलने के लिए आई। उनके साथ बातचीत करते हुए गांधीजी ने कहा, "विदेशी सत्ता तो अब थोड़े ही दिनों में चली जायगी। लेकिन हमारी रग-रग में व्याप्त पश्चिम की शिक्षा, पश्चिम की सस्कृति, पश्चिम का रहन-सहन, जिस दिन ये सब जायगे उसी दिन मैं मानूगा कि हमने सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त की, क्योकि इस संस्कृति ने हमारे देश के भाइयो और बहनों दोनों के जीवन को खर्चीला और कृत्रिम बना दिया है। इससे जब मुक्ति मिलेगी तभी ऐसा लगेगा कि हमने सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त की है।"

लेकिन उनके जाने के बाद विहार का मंत्रिमण्डल उनसे मिलने के लिए आया। उससे उन्होने स्वतन्त्र भारत मे मत्री और गवर्नर कैसे हो, इसपर जो चर्चा की, वह बहुत महत्त्वपूर्ण थी। उन्होने कहा, "१. मत्रियो अथवा गवर्नरो को जहातक हो सके, वहातक अपने देश मे उत्पन्न होनेवाली वस्तुएं ही काम मे लेनी चाहिए और करोडो गरीबो को रोटी मिले, इसके लिए उन्हे तथा उनके कुटुम्ब को खादी ही पहननी चाहिए और अहिंसा के इस चक्र को हमेशा घूमता हुआ रखना चाहिए।

२. उन्हें दोनों लिपिया सीख लेनी चाहिए। जहांतक हो सके आपस की बातचीत में भी अंग्रेजी का व्यवहार नही करना चाहिए। सार्वजनिक रूप में तो हिन्दुस्तानी ही बोलनी चाहिए और अपने प्रान्त की भाषा का खुलकर उपयोग करना चाहिए। आफिस में भी जहातक हो सके, हिन्दुस्तानी में ही पत्र-व्यवहार होना चाहिए, हुक्म या सर्क्यूलर भी हिन्दुस्तानी में ही निकलने चाहिए। ऐसा होने से लोगों में व्यापक रूप से हिन्दुस्तानी सीखने का उत्साह बढेगा और धीरे-धीरे हिन्दुस्तानी भाषा अपने-आप देश की सामान्य भाषा बन जायगी।

३. मत्रियों के दिल में अस्पृश्यता, जाति-पाति या मेरे-तेरे का भेदभाव नही होना चाहिए। किसीका थोडा भी असर कही नही चलना चाहिए। सत्ताधारी की दृष्टि में अपना सगा बेटा, सगा भाई या एक सामान्य माना जानेवाला शहरी, कारीगर या मजदूर सभी एकसे होने चाहिए।

४. इसी तरह उनका व्यक्तिगत जीवन भी इतना सादा होना चाहिए कि लोगों पर उसका प्रभाव पड़े। उन्हें हर रोज देश के लिए एक घंटे शारीरिक श्रम करना ही चाहिए, भले वे चरखा काते या अपने घर के आसपास अन्न या सागभाजी लगा कर देश के खाद्य-उत्पादन को बढ़ाये।

५. मोटर और बंगला तो होना ही नही चाहिए। आवश्यक हो वैसा और उतना बड़ा साधारण मकान काम में लेना चाहिए। हा, अगर दूर जाना हो, या किसी खास काम से जाना हो तो जरूर मोटर काम में ले सकते है। लेकिन मोटर का उपयोग मर्यादित होना चाहिए, मोटर की थोड़ी-बहुत

जरूरत तो कभी-कभी रहेगी ही।

६. मेरी तो इच्छा है कि मन्त्रियो के मकान पास-पास हो, जिससे वे एक-दूसरे के विचारो में, कुटुम्बो मे और कामकाज मे ओतप्रोत हो सके।

७ घर के दूसरे भाई-बहन या बच्चे घर मे हाथ से ही काम करे। नौकरो का उपयोग कम-से-कम होना चाहिए।

८ आज जब देश के करोडो मनुष्यो को बैठने के लिए शतरजी तो क्या, पहनने के लिए कपड़े भी नही मिलते, तब विदेशी महगे फर्नीचर—सोफासेट, अलमारिया या चमकीली कुर्सिया बैठने के लिए नही रखी जानी चाहिए।

९. और मन्त्रियो को किसी प्रकार के व्यसन तो होने ही नही चाहिए।

ऐसे सादे, सरल और आध्यात्मिक विचार रखनेवाले जनता के सेवको की जनता रक्षा करेगी। जनता ऐसे उत्तम सेवको की रक्षा किये विना रह ही नही सकती, इसमे मुझे तिल-भर भी शंका नही है। प्रत्येक मत्री के बगले के आसपास आज जो छ या इससे अधिक सिपाहियो का पहरा रहता है, वह अहिंसक मत्रि-मण्डल को वेहूदा लगना चाहिए। इससे बहुत खर्च वढ जायगा।

लेकिन मेरे इन विचारो को मानता कौन है! फिर भी मुझसे कहे विना रहा नही जाता, क्योकि मूक साक्षी रहने की मेरी इच्छा नही है।"

: ५ :

हमें करोड़ों से कतवाना है

एक सभा में एक भाई ने खूब उलझी हुई घुण्डी गाधीजी को अर्पित की। उसे देखकर गाधीजी बोले, "जैसी यह उलझी हुई घुण्डी है वैसी ही देश की गुत्थी उलझी हुई है। मै चाहता हूं, आप उलझन सुलझाकर कुछ अच्छी घुण्डी भेजे। यदि हम 'सूत के धागे से स्वराज्य' का सिद्धान्त मानते है, तो इस घुण्डी को देखने से तो करोडो वर्षो मे भी हम स्वराज्य के योग्य नही बनेगे। हमारा सूत सुन्दर, बटदार, एकसा और मिल के सूत के मुकाबले का होना चाहिए, क्योंकि हमे करोडों से कतवाना है।"

तभी कुछ विद्यार्थी आ गये। उनमें एक बड़े ओहदेदार की लडकी थी। उसने हस्ताक्षर-पुस्तिका पर गांधीजी के हस्ताक्षर मागे। गाधीजी ने कहा, "देखो भाई, बड़े आदमी के हस्ताक्षर का आप इतना मूल्य लगाते है, तो वह आपको मुफ्त नही मिलेगा।"

विद्यार्थियों ने कहा, "यदि आप मूल्य मांगे तो हम देने के लिए तैयार है।"

वेचारे विद्यार्थी! उन्हे क्या पता था, गांधीजी क्या माग वैठेगे! शायद चन्दा देने के लिए कहेगे! गहने मागेगे! अधिक-से-अधिक खादी पहनने के लिए कहेगे, इसीलिए वह तुरन्त मूल्य देने को सहमत हो गये थे। गाधीजी ने कहा, "हस्ताक्षर के बदले में दो हजार गज मासिक सूत की मांग करता हूं।"

देखभाल से उन्हे चकित कर दिया। उनकी जाच करने की रीति तो अद्भुत थी। वह परिचर्या करनेवाले को भी परखते थे। एक दिन श्री शाह की पत्नी से पूछा, "तुम साबूदाने की खीर कैसे तैयार करती हो?"

वह बोली, "साबूदाने को साफ करके दूध मे डालकर पका लेती हू।"

गाधीजी ने पहले तो उनका कान पकडकर सबको हँसाया। फिर कहा, "पहले साबूदाने को पानी मे चढा दो, फिर दूध डाल-कर गर्म करो। इस तरह दूध को ज्यादा देर चूल्हे पर नही रखना पडेगा। अगर शुरू से ही दूध मे साबूदाना डाल दिया जाय तो वह खीर बीमार को नुकसान पहुचायेगी।"

इसके बाद शुरू हुई प्राकृतिक चिकित्सा। डा० तलवलकर भी आ गये थे। फिर तो श्री शाह बीमार के साथ-साथ बीमारी का अध्ययन करनेवाले विद्यार्थी बन गये। धीरे-धीरे वह जान गये कि उनकी तबीयत किस प्रकार सुधर सकती है। गाधीजी प्रार्थना के पहले, रोज उन्हे देखने आते और समय हो जाने पर वापस दौडते। श्री शाह ने उन्हे मना किया, लेकिन वह कब माननेवाले थे! वह प्रतिदिन आते रहे। समय होने पर घडी देखते और कहते, "अब मै भागता हू।"

इस प्रकार आठ महीने बीत गये। बीच मे गाधीजी दिल्ली गये तो उनसे आज्ञा लेकर ही गये। अब वह बिलकुल ठीक हो गये थे। सोचते थे कि अगर गाधीजी का सहारा न मिलता तो क्या होता! एक दिन वह टहल रहे थे कि गाधीजी आ पहुचे। हँसते हुए बोले, "क्यो, अब मेरे साथ मैदान मे आना है?"

यह कहकर उन्होने आस्तीन चढाने का अभिनय किया, जैसे वह शाह को तन्दुरुस्तों की दुनिया मे आने के लिए आह्वान कर रहे हो और कह रहे हों कि देखा, हो गये न देखभाल से ठीक।

: ८ :

यह पैसा लाखों रुपयों के दान से अधिक पवित्र है

उस दिन गाधीजी ने अहमदाबाद स्थित 'कड़िया की बाड़ी' में स्त्रियों की एक सभा में भाषण दिया। उसके बाद चन्दा जमा करने का काम आरम्भ हुआ। कुछ लड़कियां और आश्रम की कुछ बहने स्त्रियों के बीच घूमने लगी। सभा का दृश्य देव मंदिर जैसा बन गया। सभी स्त्रियों ने पैसों, अठन्नियों और रुपयों की जी खोलकर वर्षा की। कुछ वहने पास में अधिक न होने के कारण वडी व्यथित हुईं। अनेकों ने अपने घर के पते लिखवाये और आग्रह किया कि वहां आकर अमुक-अमुक रकम ले जायं।

थोड़ी ही देर में लगभग सवा सौ रुपये की रेजगारी का ढेर वहा लग गया। उसमे तांबे के सिक्के, पैसे और अधन्नियां ही नही, अधेलियां और पाइयां तक भी थी। गांधीजी के नेत्र यह सब देखकर सजल हो आये। उन्होने कहा, "यह पैसा लखपतियों के लाखों रुपयो के दान से अधिक पवित्र है। ताबे के हर पैसे के साथ अहमदाबाद की बहनो की आत्मा जुड़ी हुई है। इस पवित्र

धन से मै देश के बालको को शिक्षा दूगा। इन पवित्र पाई-पैसों के दान पर स्वराज्य लाऊगा।"

इसी समय एक लडकी ने सहसा अपने कान का जेवर उतारा। दूसरी ने भी उतारा। तीसरी ने हाथ की चूडी निकाली। बस, क्षण-भर मे चारो ओर से गहने उतरने लगे। देखते-देखते अगूठिया, कठिया, लौग, मालाए, पहुचिया, लौकेट और इसी प्रकार के छोटे-बडे अलकारो का ढेर लग गया। गाधीजी विनोद करते जाते थे और समझाते भी जाते थे कि जो बहने घर जाकर नये जेवर मागे, उनके गहने मुझे नही चाहिए। उन स्त्रियो ने गाधीजी को विश्वास दिलाया कि वे अब कभी भी आभूषण नही पहनेगी।

गाधीजी ने उत्तर दिया, "आपत्काल मे आपको यही शोभा देता है। यही आप सबका धर्म है।"

जब वह आश्रम लौटे तो सध्या हो आई थी। सायकालीन प्रार्थना मे भी चन्दे का यह क्रम टूटा नही। कुछ बहनो ने तो चूडियो पर की सोने की पत्तिया ही उतारकर अर्पित कर दी।

: ९ :

अच्छा, तो ये स्वतंत्र हैं!

उस वर्ष किसान-सम्मेलन सोजित्रा (सौराष्ट्र) में हुआ था। वहां से पाच मील की दूरी पर एक गाव है सुणाव। वहा से कुछ शिक्षक लोग १३० विद्यार्थियो को लेकर सवेरे-ही-सवेरे

गाधीजी के दर्शन करने के लिए आये। प्रत्येक शिक्षक और विद्यार्थी ने अपने हाथ से पीनी हुई रुई की अपने हाथ से बनाई हुई पूनियो का सूत काता था। बढिया ढग से काता हुआ और पैक किया हुआ ऐसा लगभग दो लाख गज सूत उन्होने गाधीजी के चरणो में अर्पित किया। गाधीजी बहुत प्रसन्न हुए। उनसे बातचीत करते हुए उन्होने पूछा, "कहो भाई, तुम इतना सारा कातते हो सो किसलिए ?"

उस लडके ने उत्तर दिया, "आपने हम सबको कातने में लगाया है, हम सबको जगाया है।"

गाधीजी ने कहा, "मै तुमसे कातने को कहता हूं, इसलिए कातते हो या तुम्हे कोई लाभ है?"

तुरन्त उत्तर मिला, "हम परतन्त्र थे, अब स्वतन्त्र हो गये।"

गाधीजी ने पूछा, "स्वतन्त्र कैसे हो गये ?"

उत्तर मिला, "अपने कपडे हम अपने ही हाथ से कते हुए सूत से बनवाते है। इसलिए उतने स्वतन्त्र तो हो ही गये है न!"

गाधीजी ने कहा, "अच्छा, तुम अपने कपडे भी बना लेते हो।"

एक शिक्षक ने कहा, "इनमे ज्यादातर के कपडे इनके हाथ के कते सूत के ही है।"

गांधीजी ने पूछा, "कितनो के ऐसे कपडे हैं ?"

कुछ विद्यार्थियों ने हाथ उठाये। गाधीजी बोले, "अच्छा, तो ये स्वतन्त्र है। अब देखू, परतन्त्र कितने है ?"

हंसते-हँसते परतन्त्रो ने भी अपने हाथ ऊपर उठा दिये।

उनसे गाधीजी ने पूछा, "अच्छा, अब तो तुम लोग भी बनवा लेने का निश्चय करोगे न ?"

इसपर झट से एक लडका खडा हो गया और बोला, "हमें काग्रेस को सूत भेजना पडता है और इसके अतिरिक्त फिर कपड़ो के लिए सूत कातना मुश्किल होता है।"

"क्यो मुश्किल होता है ?"

उत्तर मिला, "दूर के गाव से पैदल आना पडता है और पैदल जाना पडता है। पाठ याद करने का समय भी मुश्किल से मिलता है। अक्सर रात को भी कातना पडता है।"

गाधीजी हँसते हुए बोले, "इसमे मुझे दया नही आयगी। मैने बहुत लडको को तुमसे ज्यादा चलाया है। दक्षिण अफ्रीका मे सवेरे चार बजते ही मैं आश्रम के विद्यार्थियो को २१ मील चलाता था। फिर थोडा नाश्ता होता था। शाम को फिर २१ मील चलते। इस प्रकार ४२ मील हो गये न ! इसलिए मुझे तुमपर दया नही आती। इतना चलते रहो, काम करते रहो और अपने शिक्षको की भी अकड निकालते रहो।"

आगे गाधीजी बोले, "अकड निकालने का अर्थ जानते हो ? अकड या बाक किसमे पडती है ?"

एक विद्यार्थी बोला, "तकुवे मे।"

गाधीजी ने पूछा, "तब बाक निकालने का अर्थ क्या है ?"

दो-तीन विद्यार्थी बोल उठे, "सीधा करना।"

गाधीजी ने कहा, "ठीक है। शिक्षको को सीधा किस तरह किया जा सकता है ? उन्हे तग करके ?"

विद्यार्थी बोले, "जी नही, सवाल करके।"

गाधीजी बोले, "ठीक कहा। गीताजी को जानते हो ? गीताजी में कहा है 'प्रणिपात करके, बार-बार प्रश्न करके, सेवा करके, अर्जुन ने श्रीकृष्णजी की अकड निकाली थी। वैसे ही तुम भी निकाल लो। अच्छा, तो अब तुम यह सूत लाये, इतना सुन्दर काम करके दिखाया, इसके लिए तुम्हारा उपकार मानू क्या ?"

विद्यार्थी बोले, "जी, नही।"

"क्यों ?"

"यह तो हमारा फर्ज है। गरीबो के लिए कातना सबका कर्त्तव्य है। इसमे उपकार काहे का !"

गाधीजी बोले, "एक और दूसरे कारण से भी मुझे तुम्हारा उपकार नही मानना चाहिए। तुम भले ही मुझे मा-बाप के रूप में न मानो, परन्तु मै तुम्हारा बुजुर्ग तो माना ही जाऊगा न ? बुजुर्ग के नाते मै क्या तुम्हारा उपकार मान सकता हूं !"

: १० :

निराशा शब्द मेरे शब्दकोश में नहीं मिलेगा

उस दिन एक पारसी भाई मिलने आये। उनका सम्बन्ध किसी मासिक पत्र से था। उसीको दिखाकर वह गाधीजी से बोले, "पारसी युवकों को सदेश के रूप मे यदि दो शब्द भेज दे तो हम अगले अक में छाप देगे।"

फिर कुछ रुक कर कहा, "गांधीजी, आज्ञा हो तो एक सवाल पूछना चाहता हूं।"

गांधीजी बोले, "बेशक, पूछिए।"

उन्होंने पूछा, "आपने असहयोग किया, उस समय आपने कितनी आशा रखी थी और आज आप कितने सफल हुए। बड़ी आशा रखी, इसलिए क्या बड़ी निराशा नही हुई?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "निराशा शब्द मेरे शब्दकोश मे ढूढने पर भी नही मिलेगा। एक वर्ष मे स्वराज्य मिलेगा, इस विश्वास की एक शर्त थी और वह यह थी 'यदि लोग इतना करें तो यह होगा।' यह शर्त विवेक-शून्य नही थी। कोई कहे कि एक-पर-एक सीढी चढे तो आकाश पर चढा जा सकता है। यह बात मूर्खतापूर्ण कही जायगी, परन्तु मुझे ऐसा नही लगता कि मैंने बिना विचारे शर्त रखी।"

पारसी भाई ने पूछा, "आपने जो आशा रखी थी, वह लोगो की शक्ति से बाहर नही थी?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "नही, बिल्कुल नही। मैंने अपनी आखो से दिसम्बर महीने मे देखा था कि सब लोग अनुभव कर रहे थे कि स्वराज्य मिल गया है और वह मिल जाता, परन्तु चौरीचौरा आ गया। वह आ गया, सो भी सुन्दर हुआ। ईश्वर की कला अकल्पनीय है। वह जो करता है, वह अच्छे के लिए करता है। यदि स्वराज्य मिल गया होता, तो शायद परिणाम बुरा होता। पिछले दो वर्ष मे जो अनुभव हुए है उनसे लगता है कि यह हमारे भले के लिए ही हुआ। मुझे यह हरगिज नही लगता कि हमने लड़ाई हारी है।"

पारसी भाई ने कहा, "हार ही में जीत है, यही न ?"

गाधीजी बोले, "हा, जितनी मजिल पार की है, उतनी जीत है। आज हम अपनी शक्ति अधिक अच्छी तरह जानते है।"

पारसी भाई ने कहा, "परन्तु गाधीजी, आपको तो लोग हवाई किले बनानेवाला कहते है। मुझे तो लगता है कि अच्छा वकील सबकुछ देखभाल कर ही काम करनेवाला होता है। इसलिए आप भी अच्छे वकील होने के साथ गहराई में जानेवाले है। निराशा हो तो कोई बात नही, आज आपने जो कदम उठाया है, वह उठाना ही चाहिए, यह समझकर ही उठाया है न ?"

गाधीजी ने कहा, "आपकी और सब बाते सच है, परन्तु एक गलत है। मुझे निराशा थी ही नही। मुझमें निराशा हो तो मै लड़ूगा ही नही। मै आपसे कहता हू कि मैने जीवन-भर इसी प्रकार वकालत की है। मै समझता कि मामला साफ है, मेरा मुवक्किल जरूर जीतेगा तभी मामला लेता। अक्सर ऐसा होता कि आधे रास्ते जाकर मुझे पता लगता कि मामला कमजोर है। मुवक्किल ने कुछ-न-कुछ किया है, तो मै विनयपूर्वक मजिस्ट्रेट से कह देता, 'मामले का फैसला मेरे विरुद्ध कर दीजिये।' मुवक्किल को भी समझाता कि उस फैसले से सन्तोष माने। ऐसा करने के कारण मै बहुत ही थोडे मुकदमे हारा हूं। मेरा यह मामला भी ऐसा ही था। मैने कुछ कुरबानियो की आशा रखी थी।"

पारसी भाई बोले, "क्या आपने यह मान लिया था कि आप जितनी कुरबानी चाहते है, लोग उतनी देगे ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "इस बारे मे कोई शंका नही।"

चरखा राष्ट्रीय जीवन का प्रतीक है

गाधीजी उन दिनो सेवाग्राम मे 'आदिनिवास' के एक कोने मे रहते थे। आश्रम अभी पूरी तरह विकसित नही हो पाया था। उन्ही दिनो श्रीमन्नारायण भी वर्धा आकर रहने लगे थे। एक दिन गाधीजी ने उन्हे मिलने के लिए बुला भेजा। वह आये। गाधीजी ने पूछा, "तुमने कहातक शिक्षा पाई है ?"

श्रीमन्नारायण ने उत्तर दिया, "बापूजी, मैने अग्रेजी मे एम० ए० की डिग्री प्राप्त की है।"

गाधीजी ने फिर पूछा, "क्या तुम चरखा चलाना जानते हो ?"

श्रीमन्नारायण ने उत्तर दिया, "जानता तो नही, पर अब चलाना सीख लूगा।"

गाधीजी मुस्करा उठे। कहा, "चरखा तो हमारे राष्ट्रीय जीवन का प्रतीक है। इसके द्वारा ही हम देश की गरीब जनता की सेवा कर सकेगे। तुमने अभी तक चरखा-शास्त्र न सीखकर खाक ही छान रखी है न !"

फिर थोडा रुके। बोले, "अच्छा, अब मैं तुम्हे असली खाक छानने का काम दूगा।"

और उन्होने तुरन्त एक आश्रमवासी को बुलाया। कहा, "देखो, कल से श्रीमन् को भी आश्रम की सडासो के लिए मिट्टी छानने के कार्य मे अपने साथ ले लेना।"

हम जनता के पैसे पर जीते हैं

लन्दन मे गोलमेज परिषद के समय एक दिन गाधीजी कही भोजन के लिए गये। जो कुछ वह भारत मे खाते थे वही वह वहा भी खाते थे। उन दिन मीराबहन शहद की बोतल साथ ले जाना भूल गई। खाने के समय उन्हें इसकी याद आई। अब क्या करे? शहद तो अवश्य चाहिए। उन्होने तुरन्त किसीको बाजार भेजा और शहद की एक बोतल मगवा ली।

गांधीजी भोजन करने बैठे। उस बोतल मे से उन्हे शहद परोसा गया। उसे देखकर वह तुरन्त बोले, "यह बोतल तो नई दिखाई देती है। पुरानी बोतल कहां गई?"

मीराबहन ने डरते-डरते कहा, "बापू, वह बोतल मैं भूल आई थी। यह बाजार से नई मगाई है।"

गाधीजी सहसा गभीर हो गये। कई क्षण बाद उन्होने कहा, "एक दिन शहद न मिला होता तो मै भूखा थोडे ही मर जाता! तुमने नई बोतल क्यों मगाई? हम जनता के पैसे पर जीते है। जनता के पैसे की फिजूलखर्ची नही होनी चाहिए।"

वह कोई दूसरा गांधी होगा

सत्याग्रह के प्रारम्भिक दिनो में गाधीजी एक बार बम्बई के 'मणिभवन' मे ठहरे हुए थे। तभी एक दिन, विदेशी कपडे का बहिष्कार किस प्रकार सफल हो सकता है, इसपर वे नगर-सेठो से चर्चा कर रहे थे। बाहर अनेक स्त्री पुरुप उनके दर्शनो के लिए उत्सुक उनकी राह देखते थे कि रात के नौ बजने को हुए। उन्हे कई सभाओ मे जाना था। टेलीफोन की घटी बराबर बजे जा रही थी। परन्तु वह थे कि निश्चित भाव से सब काम करते चले जा रहे थे। आखिर बाहर जाने के लिए उठे। कुर्ता-टोपी मागा और खडे-ही-खडे कुछ लोगो से बाते करने लगे। सहसा एक गुजराती सज्जन ने कहा, "आपको याद होगा जब आप लन्दन मे कानून का अध्ययन कर रहे थे, तब सर मचरजी भावनगरी के सभापतित्व मे आपका एक भाषण हुआ था। उसमे आपने इस बात का प्रतिपादन किया था कि इग्लैण्ड मे रहनेवाले गुजरातियो को अग्रेजी मे ही अपना कामकाज करना चाहिए।"

आश्चर्यचकित होकर गाधीजी ने पूछा, "क्या मैने यह कहा था कि अग्रेजी मे ही कामकाज करना चाहिए?"

दृढ स्वर मे उन गुजराती सज्जन ने कहा, "जीहा।"

गाधीजी ने फिर पूछा, "क्या अग्रेजी मे ही?"

वह बन्धु बोले, "जीहा।"

महात्माजी खिलखिलाकर हँसे। बोले, "तो फिर वह कोई

दूसरा गाधी होगा। मैने तो इस जीवन में किसी गुजराती को यह सलाह नही दी कि अपनी भाषा छोड़कर अंग्रेजी में कामकाज करे। एक सभा की बात मुझे खूब याद है, लेकिन उसमें मैने गुजराती में ही कामकाज करने के लिए कहा था।"

अब उन गुजराती बन्धु की समझ में अपनी भूल आई। लज्जा से लाल होकर वह बोले, "जीहा, जीहां, आप ठीक कहते है। मेरे मुह से गलती से गुजराती के स्थान पर बराबर 'अंग्रेजी' निकलता गया। वडी भूल हुई क्षमा कीजिये।"

: १४ :

नमक ही खारापन छोड़ दे तो...

एक बार गांधीजी प्रवास में थे। जैसा उनका स्वभाव था जरा भी समय मिलता, वह चर्खा कातने लगते थे। उस दिन जैसे ही उन्होंने अपना चर्खा खोला तो देखा कि उसमे पूनी नही है। चलते समय वह रखना भूल गये। उन्होने महादेवभाई को आवाज दी और कहा, "अरे महादेव, मै सेवाग्राम से रवाना होते समय पूनी रखना भूल गया। अपने पास से थोडी पूनिया दोगे न ?"

महादेवभाई नें कोई जवाब नही दिया। गांधीजी ने फिर पूछा, "दोगे न, भाई ?"

महादेवभाई ने डरते-डरते कहा, "बापू, मै रोज कातता हूं, लेकिन आज चर्खा ही लाना भूल गया।"

गांधीजी गम्भीर हो उठे, जैसे अन्तर्मुख हो गये हों।

'हरिजन' के लिए उन्हे एक लेख लिखना था। उसमे इस घटना की चर्चा करते हुए उन्होने लिखा, "नमक ही अपना खारापन छोड दे तो उसका यह अलोनापन कौन मिटायगा ? जो सूत-कताई का प्रसार करनेवाले है वे ही अपने व्रत का ध्यान न रखे तो उन्हे कौन सिखायगा ?"

: १५ :

मैं सशस्त्र पहरेदार कभी भी सहन नहीं कर सकता

गांधीजी उन दिनो (१९३८) उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रान्त की यात्रा पर थे। बादशाह खान (अब्दुल गफ्फार खा) स्वाभाविक रूप से उनकी सुरक्षा के लिए बहुत चिन्तित रहते थे। जब गाधीजी उत्तमानजई मे ठहरे हुए थे, तब बादशाह खान ने कुछ खुदाई खिदमतगारों को रात के समय अपने मकान की छत पर तैनात कर दिया था। वे सशस्त्र थे। ऐसा करने से पहले उन्होने गाधीजी से केवल इतना पूछा था कि पहरेदार तैनात करने पर वह कोई ऐतराज तो नही करेगे ?

गांधीजी का उस दिन मौन-दिवस था। उन्हे पूरी योजना का पता भी नही था। उन्होने सिर हिला दिया। इसका मतलब था कि उन्हे कोई ऐतराज नही है।

बादशाह खान आश्वस्त हो गये, परन्तु बाद में जब गाधीजी को पता लगा कि वे पहरेदार सशस्त्र हैं तो उन्होने कहा, "मैं

दूसरों की सुरक्षा के लिए यह बात किसी तरह सहन कर सकता हू, परन्तु अपनी सुरक्षा के लिए सशस्त्र पहरेदारो का बिठाना कभी सहन नही कर सकता। जीवन-भर जिस बात का मैने अभ्यास किया है, वह इसके बिलकुल विरुद्ध है।"

बादशाह खान ने गाधीजी की भावना का सम्मान करते हुए सशस्त्र पहरेदारों को हटा लिया, लेकिन उनका आग्रह था कि निरस्त्र पहरेदार तो रखे ही जा सकते है।

न चाहते हुए भी गाधीजी ने एक सीमा के भीतर इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

: १६ :

भूल सुधारना भी मनुष्य का स्वभाव ही है

१९३७ के पूना-प्रवास में एक शाम को श्री हरिभाऊ फाटक और श्री बालू काका कानेटकर गांधीजी से मिलने के लिए आये। चरखे के दोनो ही प्रेमी थे। हरिभाऊजी तो विनय की मूर्ति थे। उन्हे प्रेमपूर्वक फटकारते हुए गांधीजी बोले, "मुझे जो चोट पहुची है उसका दर्द अभी दूर नही हुआ है। शर्म की बात है कि पूना मे पूनिया नही। आप सब तो चरखे की बड़ी-बड़ी बाते हाकनेवाले है। बालू काका कानेटकर से तो मुझे बड़ी निराशा हुई है।"

बालू काका ने अपना बचाव करते हुए कहा, "मैं क्या करूं!

मैने पाच साल पहले कहा था कि धारा सभा के कार्य-क्रम से हमारे रचनात्मक कार्य-क्रम का सत्यानाश हो जायगा।"

गाधीजी बोले, "इसका आज की बात से क्या सबध है! आपने तो ढिढोरा पीट-पीटकर न जाने कितनी बार कहा है कि बिना चर्खे के स्वराज्य नही मिलने का। आपकी इस चरखा-भक्ति का क्या अर्थ हुआ! टेक और श्रद्धा के लिए जीने और मरने तथा दिन-रात काम करने के लिए अगर हम तैयार नही तो हमारी टेक और श्रद्धा किस काम की! यह तो सत्य का ध्वस हुआ। हम मिथ्याचारी बन रहे है। इसलिए स्वराज्य आवे तो कहा से!"

हरिभाऊ ने कहा, "आपके ये प्रहार निरर्थक नही। कल ही मकरसक्राति के शुभ दिवस से हम ठीक तरह से आरम्भ कर देगे। हरेक तरह का सरजाम जब चाहिए तब मिलेगा।"

गाधीजी बोले, "ठीक, भूल सुधारना भी मनुष्य का स्वभाव ही है, जिस तरह कि भूल करना मनुष्य का स्वभाव है। बस, अब जहा से भूल की हो वहा से गिनो। मेरे प्रहारो के बारे मे आपने कहा है। आपको शायद इसकी खबर नही है कि आपके ऊपर प्रहार करते समय मैने खुद अपने ऊपर कितना प्रहार किया होगा! और आपके सामने यह माग न रखू तो फिर किसके सामने रखू! क्या विद्यार्थियो से आशा करू? श्रीनिवास शास्त्री के आगे यह माग रखू? चरखे मे जिनका विश्वास नही, जो चरखे की टीका-टिप्पणी करते है, उनसे कैसे क्या आशा रखी जाय? अवन्तिकाबहन और श्रीमती खाडिलकर अपने हाथ के कते सूत के पचे मेरे पास हर चरखा द्वादशी को भेजती है। वही

पंचा मै आज पहने हुए हूं। खांडिलकर ने चरखे के साथ गीता के इस श्लोक का सम्बन्ध बिठाया था, 'नेहाभिक्रमनाशोस्ति, प्रत्यवायो न विद्यते'। इसे मै अक्षरश. मानता हू। एक बात और। भूल सुधारने की बात आप करते है, अवश्य सुधारिये, पर मेरे लिए कुछ न कीजिये। श्रद्धा आपके अन्दर उत्पन्न होनी चाहिए। अगर वह मुझसे उधार ली गई श्रद्धा होगी तो उससे कुछ भी बनने का नही।"

: १७ :

फिर भी वह गृहस्वामिनी है

उन दिनो सेगांव मे गाधीजी ने एक साधु को अपने पास टिका लिया था। प्रार्थना में वह अपने रचे हुए भजन गाते थे। गाव मे उनके अनेक अनुयायी थे। वे उनका दर्शन करने आते, लेकिन उन्हे बडा आश्चर्य होता कि साधु बाबा न केवल महात्मा गाधी के साथ रहते है, बल्कि उनकी झोपडी में एक हरिजन लडके के हाथ का पकाया खाना भी खाते है। वे लोग उनसे बहस करते। साधु बाबा जब उनकी शकाओ का निवारण न कर पाते तो गांधीजी से पूछते। उनके एक भक्त ने कहा, 'महात्माजी, अस्पृश्यता तो पशु-पक्षी तक मानते है, पर आप उसे मनुष्यो से भी दूर करना चाहते है। जैसे गधा कभी कुत्ते के साथ नही रहेगा, कौआ कबूतरों के अडो को नही छुएगा। प्रत्येक योनि का अपना-अपना मण्डल है, अपना-अपना स्थान है और ईश्वर की सृष्टि

में प्रत्येक का अपना-अपना उपयोग भी है ।"

गाधीजी बोले, "किन्तु गायों, गधों और कुत्तों को अगर आप साथ-साथ खिलाये और रखे तो वे बडी खुशी से एक ही जगह बने रहेगे। फिर आप क्या यह मानते है कि जो अन्तर गधे और कुत्ते के बीच मे है वही आपके और एक अस्पृश्य के बीच मे है ?"

यह सुनकर वह भक्त निरुत्तर हो उठे, लेकिन उन्हे कुछ तो कहना ही था, बोले, "क्या हम जगली खूखार जानवरो से नही बचा करते ?"

गांधीजी बोले, "इन जानवरों से क्या हम इसलिए बचते है कि ये अस्पृश्य है ? इनसे तो हम डरते है। अगर हम इन्हे पाल सके तो ये भी हमसे हिल-मिल जायगे। जो इन्हे पाल लेता है, उसको चमत्कारी कहा जाता है ।"

लेकिन वे भाई अपनी जिद पर अड़े हुए थे, बोले, "हम सुअरों को इस कारण थोडे ही नही छूते है कि हम उनसे डरते है, वल्कि इसलिए नही छूते कि वे गन्दे होते है ।"

गांधीजी बोले, "आप अपने घरो की स्त्रियो के विपय मे क्या कहेगे ? क्या वे आपके वच्चो का मलमूत्र साफ नही करती ? फिर भी वे गृहस्वामिनी है ।"

इस प्रकार गाधीजी वरावर उसके तर्क को काटकर समझाते रहे। जव उस व्यक्ति को और कुछ न सूझा तो उसने कहा, "पर आप तो यह भी चाहते हैं कि हम उन्हे अपने मदिरो मे भी ले जाय। गदा काम करनेवाले लोगो को हम अपने मन्दिरो में कैसे ले जा सकते हैं ?"

गांधीजी ने परम शान्ति से उत्तर दिया, "भाई, मैंने यह कब कहा कि मैले की टोकरियां सिर पर रखे हुए मन्दिर में घुसते हुए चले जाओ! मैने क्या यह नही कहा है कि स्नान और स्वच्छता सबधी जो शर्तें दूसरे हिन्दुओ के लिए रखी गई है, उन्हें पूरा करके ही हरिजन मन्दिरो में आयेंगे। आपके तर्क के अनुसार तो चीर-फाड करनेवाला एक भी डाक्टर और दायी हमारे मन्दिरो मे जाने के लिए योग्य नही है।"

गाधीजी के धीरज का कोई अन्त नही था। बिना उत्तेजित हुए वह घटों तक इस सबध मे शंका समाधान करने के लिए तैयार रहते थे।

: १८ :

उनका सबसे बड़ा गुण उनका महान चारित्रिक सौंदर्य था

उन दिनो गाधीजी बगलौर के पास नन्दी-पर्वत पर स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे। एक दिन तीसरे पहर सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक सर चन्द्रशेखर रामन की पत्नी साइस इस्टीट्यूट के कुछ विद्यार्थियों के साथ उनसे मिलने के लिए आई। विद्यार्थी गाधीजी को अपना इस्टीट्यूट दिखाना चाहते थे। अपने पक्ष मे वकालत करवाने के लिए ही वे श्रीमती रामन को साथ ले आये थे। लेकिन श्रीमती रामन गांधीजी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में इतनी चिन्तित थी कि वह उन्हें इंस्टीट्यूट देखने जाने के लिए विवश नही कर पा रही

थी। लेकिन जिस क्षण गाधीजी को यह मालूम हुआ कि वह साइस इस्टीट्यूट है तो वह स्वय ही तुरन्त वहां जाने के लिए तैयार हो गये। बोले, "अगर आप लोग साइंस इंस्टीट्यूट की बात कर रहे है तव तो मै वहा जरूर चलूगा, बशर्ते कि सर रामन मुझे वहा कोई वैज्ञानिक चमत्कार दिखाने की कृपा करे।"

इसके बाद वह श्रीमती रामन से बोले, "मैने आपके पतिदेव से आपकी वहुत प्रशसा सुनी है। जब वह अपने विज्ञान मथन मे तल्लीन रहते है तब आप मानव-सेवा सम्बन्धी हर तरह की प्रवृत्ति के लिए समय निकाल लेती है।"

सभी उपस्थित व्यक्तियो ने इस बात का समर्थन किया, लेकिन बेचारी श्रीमती रामन तो लज्जा से लाल हो उठी। विनम्र स्वर मे बोली, "जितना मुझे करना चाहिए उतना तो मै नही करती। खादी, हरिजन-कार्य, समाज-सेवा और इसी तरह के कामो मे मुझे दिलचस्पी है। महात्माजी, यह तो आप जानते ही हैं कि चर्खा मै कई साल से चलाती हू। कोई पन्द्रह साल पहले मैने अपने हाथ का काता हुआ सूत आपके पास भेजा था और स्वर्गीय मगनलाल गाधी ने उसकी खादी बनवाकर मेरे पास भेज दी थी। मगर मेरे पतिदेव का उन दिनो चरखे मे विश्वास नही था। वह मेरा चरखा छीन लेते और उसे तोड-मरोड डालते। पर मुझे खुशी है कि मेरे जीवनकाल मे ही आज वह दिन देखने को मिला जब वह मेरे चरखे का मजाक नही उडाते। वह भी विश्वास करने लगे है।"

गाधीजी ने कहा, "मुझे वडी खुशी हुई। लेकिन मैं तो आपसे

थी। लेकिन जिस क्षण गाधीजी को यह मालूम हुआ कि वह साइस इस्टीट्यूट है तो वह स्वय ही तुरन्त वहा जाने के लिए तैयार हो गये। बोले, "अगर आप लोग साइस इस्टीट्यूट की बात कर रहे है तब तो मै वहा जरूर चलूगा, बशर्ते कि सर रामन मुझे वहा कोई वैज्ञानिक चमत्कार दिखाने की कृपा करे।"

इसके बाद वह श्रीमती रामन से बोले, "मैने आपके पतिदेव से आपकी बहुत प्रशसा सुनी है। जब वह अपने विज्ञान मथन मे तल्लीन रहते है तब आप मानव-सेवा सम्बन्धी हर तरह की प्रवृत्ति के लिए समय निकाल लेती है।"

सभी उपस्थित व्यक्तियो ने इस बात का समर्थन किया, लेकिन बेचारी श्रीमती रामन तो लज्जा से लाल हो उठी। विनम्र स्वर मे बोली, "जितना मुझे करना चाहिए उतना तो मैं नही करती। खादी, हरिजन-कार्य, समाज-सेवा और इसी तरह के कामो मे मुझे दिलचस्पी है। महात्माजी, यह तो आप जानते ही हैं कि चर्खा मै कई साल से चलाती हू। कोई पन्द्रह साल पहले मैंने अपने हाथ का काता हुआ सूत आपके पास भेजा था और स्वर्गीय मगनलाल गाधी ने उसकी खादी बनवाकर मेरे पास भेज दी थी। मगर मेरे पतिदेव का उन दिनो चरखे मे विश्वास नही था। वह मेरा चरखा छीन लेते और उसे तोड-मरोड डालते। पर मुझे खुशी है कि मेरे जीवनकाल मे ही आज वह दिन देखने को मिला जब वह मेरे चरखे का मजाक नही उडाते। वह भी विश्वास करने लगे है।"

गाधीजी ने कहा, "मुझे बडी खुशी हुई। लेकिन मै तो आपसे

अपना कुछ काम लेना चाहता हू। क्या आप कभी स्वर्गीय कमला नेहरू से मिली थी?"

श्रीमती रामन ने उत्तर दिया, "महात्माजी, एक या दो वार मै उनसे मिली थी। परन्तु माता स्वरूपरानी नेहरू को मै बहुत अच्छी तरह जानती हू।"

महात्माजी बोले, "पर यह तो आप जानती ही है कि कमला कितनी भली थी। देश की सेवा मे उन्होने अपने को किस तरह खपा दिया था। पर उनके जिस गुण का मै सबसे अधिक आदर करता हू वह उनका राजनैतिक कार्य नही, किन्तु उनका महान चारित्रिक सौंदर्य था। उनका वह नैतिक सौंदर्य मेरी राय में प्रत्येक स्त्री-पुरुष को जानना चाहिए।"

श्रीमती रामन ने कहा, "जी, मै उनकी सेवाओ और उनके नैतिक सौंदर्य के विषय मे जानती हूं।"

गांधीजी बोले, "तब तो आपको अवश्य उनके स्मारक के लिए कुछ पैसा इकट्ठा करने में हमारा हाथ वटाना चाहिए।"

श्रीमती रामन वोली, "जरूर महात्माजी, कलकत्ता में देशवन्धु दास की मृत्यु के बाद आप कैसे जम कर वैठ गये थे और आठ लाख रुपये आपने इकट्ठे कर लिये थे, यह मुझे मालूम है। यहा भी आप ऐसा करे तो काफी रुपया इकट्ठा कर सकते है।"

गाधीजी ने कहा, "उन दिनो जितना समय मेरे पास था उतना अब नही है। पर आप यहां अपना पूरा प्रभाव डाल सकती है और जितना रुपया इकट्ठा करे उतना कर सकती है।"

श्रीमती रामन खुशी-खुशी इस वात के लिए राजी हो गई।

मुझे विलायती औजार नहीं चाहिए

सन् १९३६ मे गाधीजी ने श्री राधाकृष्ण से कहा, "मुझे कुछ बढई के औजार चाहिए। भिजवा सकोगे क्या ?"

राधाकृष्ण ने उत्तर दिया, "हा, जरूर। यहा के बढई के लिए चाहिए क्या ?"

गाधीजी बोले, "नही, खुद अपने लिए। यहा के बढई तो सादी-सी चीज को भी ठीक तरह से बनाना नही जानते। मै कभी-कभी उन्हे सबक देना चाहता हू। जिन चीजो की मुझे जरूरत है उन्हे तुम जरा नोट कर लो।"

राधाकृष्ण ने उन सब औजारो के नाम लिख लिये। एक बसूला, एक रन्दा, एक बरमी, एक हथौडा, एक आरी और एक कुल्हाडी। गाधीजी बोले, शायद तुम्हे यहा की बनी बरमी न मिले। पर मेरा खयाल है कि बाकी और औजार तो तुम्हे यहा के या हिंदुस्तान के बने ही मिल सकते है।"

यह सुन कर राधाकृष्ण चकित रह गये। बोले, "तो क्या आप ये सब औजार स्वदेशी चाहते है ? तब तो इनका मिलना असम्भव है।"

गाधीजी बोले, "तो सूची फाडकर फेक दो। मुझे विलायती औजार नही चाहिए।"

और फिर महादेव देसाई की ओर देख कर बोले, "महादेव, पता तो लगाओ कि हिन्दुस्तान के बने ये सब औजार कही मिल सकते है या नही !"

मालूम हुआ कि क्यों खद्दर पहनना है ?

गांधीजी एक वार स्वास्थ्य लाभ के लिए वेगलूर के पास नन्दी पर्वत पर जाकर ठहरे थे। उस समय एक बालिका विद्यालय की लडकिया उनसे मिलने आई थी। उनसे विनोद करते हुए गांधीजी ने पूछा, "क्या तुम्हे मालूम है कि खद्दर क्या चीज है? क्या वह एक सुन्दर चिड़िया है या कोई सुन्दर खिलौना है?"

गांधीजी के इस विनोद पर वे लड़कियां हँस पड़ी। एक ने कहा, "खद्दर माने कपड़ा।"

सहसा विनोद परीक्षा में वदल गया। गाधीजी ने पूछा, "कैसा कपड़ा?"

लडकियां यह रहस्य नही जानती थी। कई क्षण मौन रही। फिर एक लड़की ने कहा, "खुरदरा कपडा।"

उन्हे खद्दर का अर्थ समझाते हुए गांधीजी वोले, "हाथ के सूत का हाथ से वुना कपड़ा खद्दर कहलाता है। अच्छा, वताओ इसे क्यों पहनना चाहिए?"

लडकियों ने अपनी-अपनी समझ से उत्तर देने शुरू किये। किसी ने कहा, "यह टिकाऊ है।" किसी ने कहा, "यह जल्दी साफ हो जाता है।"

गांधीजी ने कहा, "यह तो ठीक है, लेकिन इसे क्यो पहनना चाहिए, इसका एक और ही कारण है। क्या तुम जानती हो,

खद्दर का सूत कौन कातता है ? अमीर लोग ? नही, इसे कातते हैं गरीव लोग । हमारे देश के लोग बहुत गरीब हैं । क्या तुम कभी देहातो मे गई हो ? जाओ तो देखोगी कि उन्हे पेट भर खाने को भी नही मिलता । दूध भी नही मिलता । ऐसे ही लोग इसे कातते हैं। उससे उन्हे एक दमडी भी मिले तो उनके लिए सौभाग्य की बात है । अगर तुम खद्दर खरीदोगी तो वही दमड़ी उन्हे मिलेगी । उससे वे नमक, मिर्च या गुड आदि खरीदेंगे । तो मालूम हुआ कि क्यो खद्दर पहनना है ?"

: २१ :

दोष-शून्य केवल परमात्मा है

विना समय लिये गांधीजी से मिलना प्राय. असम्भव था । लेकिन वच्चो के लिए ऐसा कोई नियम नही था । ऐसे ही एक दिन वहुत से वच्चे आये और उन्हे घेर लिया । वच्चे तो मेढको जैसे होते है । उन्हे अनुशासन मे रखना वड़ा कठिन होता है। गांधीजी ने क्या किया । उनसे पूछा, "क्या तुमको गिनना आता है ? जरा वांई ओर से दांई ओर गिनो तो तुम लोग कितने हो ?"

वच्चो को कुछ अनोखा-सा लगा । लेकिन उन्होने गिनना शुरू किया । पहली वार गिनने मे कष्ट हुआ, लेकिन दूसरी-तीसरी वार करते-करते वे वड़ी आसानी से गिनना सीख गये । लेकिन खेल यहीं समाप्त नही हुआ । गांधीजी ने उनसे पूछा,

"सम-विपम क्या होता है ? जानते हो ?"

केवल एक लडका ही सम-विषम का अर्थ जानता था । गांधीजी ने सवको अच्छी तरह समझाया और फिर कहा, "अच्छा, सव विषम लडके जहां है वही खडे रहे और जो सम है वे एक कदम आगे आ जाय।"

पहले तो वच्चे अचकचाए, लेकिन वाद मे दो कतारे वन गई। एक सात लड़को की दूसरी छ लड़को की, क्योकि कुल तेरह लडके थे।

अव आगे का पाठ शुरू हुआ। गाधीजी ने पूछा, "जो वच्चे तमाखू पीते है, वे अपना हाथ उठा दे। छ. वच्चो ने हाथ उठाये। गाधीजी ने उनको तमाखू पीने की हानियां वताई और फिर पूछा, "क्या तुम्हारे अध्यापक अच्छे है ? तुम्हे अच्छी तरह पढाते है ? मारते-पीटते तो नही ?"

वच्चो ने एक स्वर में अपने शिक्षकों की प्रशंसा की। गांधीजी वोले, "क्या वे तुम्हे कभी नही मारते ?"

सभी वच्चो ने एक स्वर से कहा, "कभी नही।"

गांधीजी वोले, "यह कैसे हो सकता है ? क्या तुमने कभी ऐसे आदमी को देखा है, जिसमें जरा भी खोट न हो ?"

इस वार लडके सहसा कोई उत्तर नही दे सके। लेकिन दो मिनट वाद उनका जो नेता था वह मुस्कराया और गाधीजी की ओर इशारा करके वोला, "हां, देखा है।"

उस वच्चे को अपने वारे मे यह कहते देखकर गांधीजी चकित रह गये। वोले, "न वावा, यदि मैं विलकुल अच्छा होता तो सरकार मुझे वार-वार जेल क्यो भेजती।"

इस बार बच्चो के चकित होने की बारी थी। वे कुछ जवाब न दे सके । गाधीजी ने कहा, "देखो बच्चो, मनुष्यो मे कोई भी बिलकुल अच्छा नही है। दोप-शून्य केवल परमात्मा है। हम सबको उसके जैसा बनने का प्रयत्न करना चाहिए। सत्य ही उसका मार्ग है । कितनी ही बडी गलती हम करे, लेकिन बोले सदा सच। सच बोलनेवाले को कभी दु ख नही होता।"

: २२ :

मैं आपको कन्यादान दे रहा हूं

उस दिन गाधीजी के सान्निध्य मे एक अनोखा विवाह हुआ । वर-वधू दोनो दक्षिण भारत के थे । श्री वेलायुधन त्रिवाकुर के थे और श्रीमती दाक्षायिणी कोचीन की थी। दोनो सुशिक्षित थे और धधे से लगे थे । दोनो थे तो हरिजन, लेकिन अलग-अलग जाति के थे। इसलिए शादी करना आसान काम नही था। इन झझटो से बचने के लिए ही श्री वेलायुधन ने गाधीजी की शरण ली। गांधीजी बोले, "मै तो केवल धार्मिक क्रिया करा दूगा।"

अब प्रश्न यह था कि ब्राह्मण कहां से आये ? सहसा गाधीजी को श्री परचुरे शास्त्री की याद आई । वे कुष्ठ-रोगी थे, परन्तु थे परम विद्वान । हरिभजन और सस्कृत अध्यापन में अपना समय विताते थे । उन्होने यह विवाह कराना स्वीकार कर लिया ।

६ सितम्वर, १९४० का दिन विवाह के लिए निश्चित

हुआ । शास्त्रीजी की कुटिया के सामने वेदी वनाई गई । वर-वधू दोनो वही हाजिर हो गये, लेकिन उन्हे तो अग्रेजी के अतिरिक्त और कोई भापा आती नही थी । तव शास्त्रीजी अपनी प्रत्येक बात का अग्रेजी में उलथा करके समझाते थे । सस्कृत के श्लोक वह बहुत धीरे-धीरे वोलते । एक-एक शब्द करके बोलते । गाधीजी उनको दोहराते । चूकि कन्यादान तो उन्हीको करना था, उन्होंने श्री वेलायुधन से कहा, "मै सस्कृत मे क्या बोलता हू, आप समझते है ? मै आपको कन्यादान दे रहा हूं। मैं दाक्षायिणी को सेवा के लिए और धर्म-रक्षा के लिए आपको सौप रहा हू । इसे आप याद रखेगे न ?"

इस प्रकार यह अनोखा विवाह समाप्त हुआ ।

गाधीजी भी एक नई लग्न-विधि का आविष्कार करके बहुत प्रसन्न थे। न कोई आडम्बर, न समय की अधिकता और कैसी गम्भीरता से यह काम सपन्न हुआ !

: २३ :

जब वे तुम्हारे धर्म के रास्ते में बाधा बनें तो...

उस दिन महिलाओ की एक सभा में गांवीजी का जाना हुआ । वे महिलाए आन्ध्र के प्राचीन क्षत्री राजाओ के परिवार से थी । वे सभी पर्दा करती थी और उस दिन पहली बार ही किसी सभा में आई थी । उन्हीके समाज का कोई व्यक्ति चर्खे

लेकर उनके पास गया था और उनमे जो सबसे धनी थी उसने प्रतिज्ञा की कि मै आज से चर्खा चलाऊगी और खादी पहनूगी।

यह सब जानकर गाधीजी ने उससे पूछा, "मगर तुम तो विवाहित हो।"

उन वहन ने उत्तर दिया, "जी हा।"

गाधीजी बोले, "क्या तुम्हारे पति खादी पहनते है ?"

वह वहन लज्जित हो आई। बोली, "नही।"

तव गाधीजी ने पूछा, "क्या वे तुम्हे खादी पहनने देगे ?"

वह वहन बोली, "वे जो चाहेगे, वही मै करूगी।"

गाधीजी मुस्कराये, "तब तुम्हारी प्रतिज्ञा का क्या होगा ?"

अब तो वह वहन वडी परेशानी मे पड गई। कुछ उत्तर देते न वन पड़ा। गाधीजी बोले, "क्या तुम अपने पति पर प्रभाव नही डाल सकती ?"

वह वहन अब भी मौन रही। गाधीजी ने कहा, "क्या तुम जानती हो, सीता ने राम का हुक्म तोडा था।"

वह वहन इस वात का अर्थ भी नही समझ सकी। तव गांधी-जी ने राम और सीता की कथा सुनाते हुए कहा, "राम जिस समय बनवास जा रहे थे, उन्होने सीता को अपने साथ आने से मना किया था, लेकिन क्या सीता ने राम की वात मानी थी ? नही मानी थी, क्योकि वह जानती थी कि राम के पीछे जाना उनका धर्म है। इसी प्रकार तुम भी अपने पति मे श्रद्धा रखो, उनसे प्रेम करो, लेकिन जव वे तुम्हारे धर्म के रास्ते मे वाधा वने तो उनकी वात मानने से इकार कर दो।"

वह वहन इस वात से प्रभावित हुई।

: २४ :

तुम खादी पहनोगी न ?

एक दिन तमिल और कर्नाटक प्रदेश की कई बहनें गांधी-जी से मिलने के लिए आईं। कर्नाटक की बहनों में एक प्रौढ़ा थी और एक सोलह साल की लड़की। चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने प्रौढा का परिचय कराते हुए गाधीजी से कहा, "यह वही बहन हैं, जिनके पति ने स्वय आजीवन सूत कातने और एक हजार कातनेवालों की सेना इकट्ठी करने की प्रतिज्ञा ली है।"

वह सज्जन अपनी एक नोटबुक गांधीजी के पास छोड़ गये थे। चाहते थे कि गांधोजो उनकी प्रतिज्ञा का हिन्दी अनुवाद अपने हाथ से अपने शब्दों मे लिख दें। वह प्रौढ़ा वही नोटबुक लेने के लिए आई थी। गाधोजी बोले, "जिसपर कातने का इतना रग चढ़ा हो, भला उसकी पत्नी खादी क्यों न पहने ? जबतक तुम खादो पहनकर नही आती तबतक नोटबुक नही मिल सकती।"

वह बहन बोली, "अच्छी बात है, मैं खादी पहनकर ही नोटबुक लेने के लिए आऊगी।"

अब गाधीजी उस लड़की की ओर मुड़े और पूछा, "क्यों, तुम्हारा क्या विचार है ? तुम खादी पहनोगी न ?"

लड़की ने उत्तर दिया, "अब पहनूंगी।"

यही बात गाधीजी ने तमिल बहनो से कही। वे भी खादी पहनने के लिए तैयार हो गई। अब प्रश्न यह था कि पहले कौन

अंग्रेजी क्यों, हिन्दी क्यों नहीं ?

गांधीजी उन दिनों पूना में थे। फैजपुर-कांग्रेस होकर चुकी थी। उस समय हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार जैनेन्द्रकुमार उनसे मिलने के लिए वहां पहुंचे। प्रेमचन्द-स्मारक के सबध मे सलाह-मशविरा करना था। जैनेन्द्रजी के मन मे एक अग्रेजी साप्ताहिक निकालने की वासना जग उठी। उससे पहले भी वह ऐसा सोच चुके थे और गाधीजी के सामने अग्रेजी पत्र निकालने का विचार भी रख चुके थे। उस समय गांधीजी ने उन्हे निरुत्साहित ही किया था।

इस बार फिर जैनेन्द्रजी की यह वासना गाधीजी के सामने आई तो वह बोले, "अग्रेजी क्यों, हिन्दी क्यो नही ?"

जैनेन्द्रजी ने कहा, "अग्रेजी मे बात उनतक पहुचती है, जिनतक उसे पहुचना चाहिए।"

गाधीजी तुरन्त बोले, "इसीलिए तो कहता हू, अग्रेजी मे नही। जरूरी समझो तो हिन्दी में निकालो। बात जिनतक पहुचनी चाहिए, हिन्दी मे ही पहुचेगी। अग्रेजीवालों को जरूरत होगी तो वे देखेंगे।"

यह सुनकर जैनेन्द्रजी ने कहा, "तो आपकी अनुमति नही ?"

गाधीजी ने उत्तर दिया, "मेरी तो राय है, अनुमति अपने अन्दर से ले लो। मैने तो अपनी बात कह दी। निर्णय के लिए तुम स्वय हो।"

जिसने अध्यात्म में प्रगति की है, वह बीमार नहीं पड़ता

गाधीजी उन दिनों आग़ाखां-महल में नजरबन्द थे। सन् १९४४ के अप्रेल महीने में उन्हें मलेरिया ने आ घेरा। तब उनके मन की कैसी दयाजनक स्थिति हो उठी थी, यह वही जानते हैं, जो उस समय उनके पास थे। वह मानते थे कि मनुष्य अपने पाप के कारण बीमार पड़ता है। जिसका अपने मन पर पूरा कावू है, वह बीमार नही पड़ सकता।

उस दिन जव वह अपने मन की इस स्थिति की चर्चा कर रहे थे, डाक्टर सुशीला नैयर ने कहा, "यह तो मलेरिया के कारण आई हुई कमजोरी और कुनैन का असर है। थोड़े दिनों मे यह सव दूर हो जायगा। शरीर में शक्ति आयगी तो उदासी भी चली जायगी।"

गांधीजी वोले, "शरीर में शक्ति भले ही आ जाय, मगर पहले जैसा आत्म-विश्वास कैसे वापस आ सकता है?"

सुशीला नैयर ने उत्तर दिया, "मलेरिया तो आपको पहले भी आ चुका है। उससे तो आप निराश नही हुए। उसके वाद भी तो आपने वडे-वडे काम किये है।"

गांधीजी वोले, "काम तो अव भी करूंगा। चम्पारन में मलेरिया आया था, तवसे लेकर आज २५ वर्षों में क्या मैंने कुछ भी प्रगति नही की! मैं मानता था कि मैं उस स्थिति से

बहुत आगे बढ़ गया हूं, परन्तु अब मुझे शका पैदा हो गई है।"

श्री प्यारेलाल भी वही थे। वह बोले, "आध्यात्मिक दृष्टि से तो आप आगे बढ़े हैं, पर समय बीतने के साथ-साथ शरीर तो जीर्ण होता ही है।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "नही, शरीर दुर्बल भले हो, लेकिन जिसने अध्यात्म में प्रगति की है, वह बीमार नही पडता। उसकी सब शक्तियां और स्वास्थ्य अन्त तक कायम रहते है।"

प्यारेलालजी बोले, "मैं आपकी बात समझता हू। यह तो एक तरह की सिद्धावस्था की बात हुई। उसतक आप नही पहुचे है।"

गांधीजी ने कहा, "नही, सिद्धावस्था की भी बात नही है। हां, जहांतक मै अपनेको पहुचा हुआ मानता था वहातक भी नही पहुंच पाया हू।"

डा० सुशीला नैयर बोली, "आप किसी भी पहुचे हुए, अत्यन्त संयमी, पूर्ण स्वस्थ मनवाले व्यक्ति को लाइये। मै उसे मलेरिया का बुखार चढा देने का ठेका लेती हूं। एक बार नही तो दस बार मच्छरों के काटने से उसे मलेरिया होगा, फिर वह कुनैन से उतर भी जायगा।"

गाधीजी ने उत्तर दिया, "इस बुद्धिवाद से तू मेरी मान्यता को हिला नही सकेगी। मै जानता हू कि अपनी बात सिद्ध करने के लिए मेरे पास सबूत नही है, तो भी मेरी वर्षो की यह मान्यता है कि जिसका मन पूर्णतः स्वस्थ यानी स्वच्छ है, उसका शरीर स्वस्थ रहना ही चाहिए।"

जान पड़ता है, आप दरोगाजी से डरते हैं

यह घटना उस समय की है जब गाधीजी ने निलहे गोरों के विरुद्ध चम्पारन में सत्याग्रह-आन्दोलन का श्रीगणेश किया था। वह घूम-घूमकर किसानों के बयान लिख रहे थे। उनके साथ बहुत-से स्थानीय व्यक्ति भी थे। झुण्ड बाध-बाधकर किसान लोग आते थे और अपना-अपना हाल सुनाते थे। ये लोग उनसे खूब जिरह करते और सच्ची बाते लिखते थे।

इन्ही व्यक्तियों में थे एक वकील धरनीधरबाबू। वह भी किसानों के साथ अलग बैठकर बयान लिखते थे। एक दिन क्या हुआ कि उनके पास पुलिस का एक दरोगा आ बैठा। ऐसा करने के लिए उसे सरकार की ओर से आज्ञा मिली थी, लेकिन धरनी-धरबाबू को यह सब अच्छा नही लगा। वह उठकर दूसरी जगह जा बैठे। दरोगा वहां भी आ गया। तब वकीलसाहब वहां से उठ-कर तीसरी जगह जा बैठे, लेकिन दरोगासाहब कब माननेवाले थे! जहा भी वकीलसाहब जाते, छाया की तरह वही वह उपस्थित दिखाई देता। आखिर वकीलसाहब के संयम का बांध टूट गया। उन्होंने दरोगासाहब को झिड़कते हुए कहा, "आप मेरे पीछे क्यों लगे हुए हैं?"

दरोगासाहब ने उनसे तो कुछ नही कहा, लेकिन गांधीजी से उसने इस बात की शिकायत की। तब गांधीजी ने धरनीधर-बाबू को बुला भेजा और पूछा, "आपके साथ दरोगाजी ही बैठते

है या और भी कोई ?"

धरनीधरबाबू ने उत्तर दिया, "किसान लोग तो बैठते ही है ।"

गाधीजी बोले, "जब इतने किसानो के बैठने से आपकी कोई हानि नही होती तो एक और आदमी के आ बैठने से आप क्यो घबराते है ? आप इनमें भेद क्यो करते है ? ओह, जान पडता है, आप दरोगाजी से डरते है। उस विचारे को भी किसानों के साथ बैठने दीजिये ।"

गाधीजी का यह विनोद सुनकर किसान तो जैसे भय से मुक्त हो गये, लेकिन दरोगाजी को काटो तो खून नही। गाधीजी ने उन्हे मामूली किसानो के बराबर बना दिया था।

उसके बाद वकीलसाहब ने उन्हे अपने पास बैठने से कभी नही रोका।

: २९ :

मेरे लिए अगला कदम ही काफी है

उस दिन १९४२ के अगस्त मास की ७ तारीख थी। सवेरे का समय था। गांधीजी सैर करने के लिए निकले। कांग्रेस की कार्यकारिणी सुप्रसिद्ध अगस्त-प्रस्ताव पास कर चुकी थी और अब वह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा स्वीकृत किया जाना शेष था। सारे वातावरण में एक प्रकार की सयत उत्तेजना फैली हुई थी। लोगो का ऐसा विचार था कि उक्त प्रस्ताव के स्वीकृत

होते ही देश में बहुत बड़ी घटनाएं घट सकती हैं।

सैर के समय श्री घनश्यामदास बिड़ला उनके साथ थे। उनके मन मे भावी परिणामों की आशका से भली-बुरी बाते उठ रही थी। लेकिन गांधीजी वैसे ही शान्त मुद्रा धारण किये हुए थे। उनके चेहरे से किसी भी प्रकार की अस्वाभाविकता या उत्तेजना का आभास तक नही मिल रहा था। बिड़लाजी ने पूछा, "क्या अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा अगस्त-प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने के बाद काग्रेस किसी बड़े आन्दोलन का श्रीगणेश करेगी ?"

गाधीजी ने उत्तर दिया, "नही, बिल्कुल नही। हम कोई भी कदम उठाने में जल्दबाजी करना नही चाहते। अभी वायसराय से मुझे मिलना है। वह मेरे मित्र है और प्रस्ताव की व्याख्या करने में वह जल्दबाजी से काम नही लेगे। जबतक भारत स्वदेश का स्वामी नही बन जाता, तबतक विदेशी आक्रमण का प्रतिकार करने के लिए आवश्यक उत्साह उसमें उत्पन्न हो ही नही सकता। वायसराय को अपना यह दृष्टिकोण समझाने का मै प्रयत्न करूंगा।"

बिड़लाजी ने कहा, "लेकिन मान लीजिये, सरकार अपनी बात पर अडी रहती है, तो फिर आप क्या करेंगे ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, 'तब तो फिर किसी-न-किसी प्रकार के सविनय अवज्ञा आन्दोलन का आरम्भ करना ही पडेगा। अबतक इस सम्बन्ध में मैंने कोई विचार नही किया है। पहले से योजनाएं बनाकर तैयार रखने की मेरी आदत नही है। मेरे लिए अगला कदम ही काफी है। और वह है वायसराय से भेंट

करना। यदि उन्हे कायल करने मे मै असमर्थ रहा, तो हो सकता है कि नमक सत्याग्रह की तरह कोई आन्दोलन हम आरम्भ कर दे। मै आहिस्ता कदम चलाना चाहता हूं। सकट में फसे हुए को और अधिक संकट मे ढकेलने में कोई मज़ा नही।"

: ३० :

ये हरिजन छात्र भोजन कहां करते हैं?

जनवरी, १९३४ मे बिहार मे भयकर भूकम्प आया था। उस समय गाधीजी वहा गये थे। तभी मुगेर भी उनका जाना हुआ। वहा हरिजन-आश्रम मे कुछ मिनटो के लिए उन्होने जाने का समय निकाल ही लिया। उन दिनो वह हरिजनो के लिए ही काम कर रहे थे।

आश्रम मे कई हरिजन छात्र थे। इधर-उधर की बाते करते हुए गाधीजी ने पूछा, "ये हरिजन छात्र भोजन कहा करते है?"

एक मित्र ने उत्तर दिया, "बाजार मे जो होटल है, वहीं खाते है।"

गांधीजी ने फिर पूछा, "वहा क्या इन्हे सभीके साथ खाने की सुविधा है?"

इस बार मत्रीजी ने उत्तर दिया, "जीनही, ऐसी कोई सुविधा नही। इनके लिए अलग प्रबन्ध किया जाता है।"

यह सुनकर गाधीजी बोले, "आपको शीघ्र ही अपना प्रबन्ध कर लेना चाहिए, नही तो इन छात्रो मे हीन भावना बढ जायगी।"

सत्य के पास छिपाने के लिए कुछ नहीं होता

गांधीजी गोपनीयता में विश्वास नही रखते थे । सन् १६२६ की बात है। तब वह साबरमती-आश्रम मे रहते थे। उन्ही दिनो कुमारी म्यूरियल लेस्टर वहां रहने के लिए आई। गाधीजी के कमरे के आगे जो बरामदा था, प्रायः उसके नीचे वह बैठती थी । वही भोजन भी करती थी और वही से होकर अभ्यागत लोग गांधीजी के कमरे मे जाते थे। नाना प्रकार की चर्चाएं चलती थी। कुमारी लेस्टर सबकुछ सुनती थी। शुरू-शुरू में उन्हे बहुत सकोच हुआ, लेकिन एक दिन क्या हुआ कि किसीने आकर गांधीजी से कहा, "आश्रम में एक जासूस घूम रहा है।"

सहज भाव से गांधीजी ने इतना ही कहा, "जासूस को आने दो। सत्य के पास छिपाने के लिए कुछ नही होता।"

उस दिन के बाद कुमारी लेस्टर का संकोच दूर हो गया। अब वह सहज भाव से अपना काम करती रही।

इसे मैं नहीं तोड़ सकता

यह बात सन् १८९२ की है। गांधीजी उन दिनो बैरिस्टर बनने के लिए लन्दन मे शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। धर्म के प्रति उनका आकर्षण शुरू से ही था। लन्दन मे वह ईसाई धर्म के अनेक प्रचारको के सम्पर्क मे आये। उनके प्रार्थना-समाज मे भी वह गये। ऐसे ही एक दिन वह मिस्टर बेकर के प्रार्थना-समाज मे गये। वहा उनका मिस्टर कोट्स नाम के एक युवक से परिचय हुआ। धीरे-धीरे वह परिचय घनिष्ठता मे परिवर्तित हो गया।

मि० कोट्स शुद्ध भाववाले व्यक्ति तो थे, लेकिन थे कट्टर। उन्होने गाधीजी का अनेक मित्रों से परिचय कराया, पढने के लिए उन्हे अनेक पुस्तके दी। उन पुस्तको पर वह चर्चा भी किया करते थे। वस्तुतः उनके स्नेह की कोई सीमा नही थी।

एक दिन मि० कोट्स ने देखा कि गाधीजी के गले मे एक कण्ठी है। उसे देखकर उन्हे बहुत दु ख हुआ। बोले, "यह अन्ध-विश्वास तुम जैसो को शोभा नही देता। लाओ, इसे मै तोड दू।"

गाधीजी ने उत्तर दिया, "यह कण्ठी तोडी नही जा सकती।"

मि० कोट्स ने पूछा, "क्यो ?"

गाधीजी ने उत्तर दिया, "क्योकि यह मेरी माताजी की प्रसादी है।"

आश्चर्य से मि० कोट्स बोले, "पर क्या इसपर तुम्हारा विश्वास है ?"

गांधीजी ने सहज भाव से उत्तर दिया, "मै इसका गूढ़ार्थ नही जानता। यह भी नही मानता कि यदि इसे नही पहनू, तो कुछ अनिष्ट हो जायगा, परन्तु जो माला माताजी ने मुझे प्रेम-पूर्वक पहनाई है, जिसे पहनाने मे उन्होने मेरा कल्याण माना है, उसे मैं बिना प्रयोजन नही निकाल सकता। समय पाकर जीर्ण होकर जब वह अपने-आप टूट जायगी तब दूसरी मंगाकर पहनने का लोभ मुझे नही रहेगा, पर इसे मै नही तोड़ सकता।"

: ३३ :

हिन्दुस्तान की मिट्टी मेरे सिर का ताज है

जापान के सुप्रसिद्ध कवि योन नागुची सन् १९३५ में भारत आये थे। स्वाभाविक ही था कि वह गाधीजी से मिलते। इसीलिए वह दिसम्बर के महीने मे वर्धा पहुचे।

आश्रम को देखकर वह प्रसन्न हुए। उन्हीके शब्दों में, "वह आश्रम एक तपोभूमि या साधना-मन्दिर था, जहा पुराने ऋषि-मुनियों या साधको से सर्वथा भिन्न रूप में इस युग के ऋषि पर अपने राष्ट्र के जीवन की आशा या पीडा की समस्त हलचलों की प्रतिक्रिया होती थी।"

उस समय गांधीजी बीमार थे। इसलिए जब कवि उनसे

मिलने के लिए पहुंचे, वह दुमजिले मकान की पक्की छत पर लगे हुए एक चौकोर तम्बू मे लेटे हुए थे। सन्त की जैसी मुस्कराहट उनके मुख पर थी। टागे टेढ़ी-सी और दुबली, पर लोह शलाका-सी मजबूत, सामने फैली हुई थी। एक शिष्य मालिश कर रहा था। इस साधारण-से प्रभावहीन दिखाई देने-वाले व्यक्ति का उसके ऐतिहासिक उपवासो के साथ मेल बैठाना कवि नागुची के लिए कठिन हो गया। उन उपवासो ने इग्लैण्ड की विशाल आत्मा को भी भय से थर्रा दिया था। कवि के सामने ही गांधीजी ने सूती कपड़े मे कुछ लपेटकर सिर पर रखा। कवि को बडा आश्चर्य हुआ। पूछा, "यह क्या है ?"

गाधीजी ने उत्तर दिया, "यह गीली मिट्टी है। उनके डाक्टरो के आदेश के अनुसार उनके जैसे खून के दवाव के शिकार लोगो के लिए लाभदायक होती है।"

यह कहते हुए उपेक्षा और दार्शनिकता से मिश्रित हँसी हँसे और वोले, "मै हिन्दुस्तान की इस मिट्टी से पैदा हुआ हू और यही मिट्टी मेरे सिर का ताज है।"

: ३४ :

स्वच्छता तो पाली जा सकती है न !

उन दिनो गाधीजी यरवदा-जेल मे नजरवन्द थे। महादेव देसाई और सरदार वल्लभभाई पटेल भी उनके साथ थे। १९३२ की वसन्त ऋतु थी। गाधीजी सुवह ४ वजे प्रार्थना के वाद नीवू

और शहद का पानी पीते थे।

प्रतिदिन उबलता हुआ पानी शहद और नीबू के रस पर उंडेला जाता था। जबतक पानी पीने योग्य न हो जाय, तबतक महादेवभाई और सरदार वही बैठे रहते थे या बैठे-बैठे पढते रहते थे। एक दिन सहसा गांधीजी ने कहा, "इस पानी को एक कपड़े के टुकड़े से ढंक देना चाहिए।"

दूसरे दिन बोले, "महादेव, तुम्हे मालूम है कि यह कपड़ा ढंकने के लिए मैंने क्यो कहा ? हवा में इतने छोटे-छोटे जन्तु होते हैं कि वे पानी में उठती हुई भाप के कारण उसके अन्दर पड़ सकते है। कपडा ढंकने से उसमें बचाव हो जाता है।"

यह सुनकर सरदार सदा की तरह व्यंग्य से हँसे और बोले, "इस हद तक हमसे अहिसा नही पाली जा सकती।"

उसी सहज भाव से हँसकर गांधीजी ने उत्तर दिया, "अहिसा तो नही पाली जा सकती, मगर स्वच्छता तो पाली जा सकती है न !"

: ३५ :

क्या तुम भोजन करोगी ?

पहुंचे। वह किसी महत्त्वपूर्ण दस्तावेज का इन्तजार कर रहे थे। साथ ही श्री जयरामदास दौलतराम दैनिक पत्रो से विशेष समाचार पढकर सुना रहे थे। समाचार सुनते-सुनते सहसा गाधीजी ने काठियावाडी लहजे में सहज भाव से भारती से पूछा, "क्या तुम भोजन करोगी ?"

भारती ने उत्तर दिया, "मै तो भोजन करके ग्राई हू।"

गाधीजी बोले, "तब तो दूध, मक्खन ग्रौर सब्जी सबकुछ बच जायगा।"

भारती ने कहा, "ग्रापका मतलब है सबकुछ व्यर्थ जायगा ?"

गाधीजी बोले, "हा, व्यर्थ तो जायगा ही।"

भारती ने उत्तर दिया, "लेकिन मैने तो ग्रापसे यह कभी नही कहा था कि मै खाना खाने के लिए ग्रा रही हू।"

"गाधीजी हँसे ग्रौर कहा, "झूठी कही की! क्या तुमने कल सवेरे यह नही कहा था कि तुम ग्राज सुबह वर्धा से यहां ग्राग्रोगी ग्रौर सारा दिन ठहरोगी ?"

: ३६ :

मेरे पास तो ग्रपना कुछ है ही नहीं

गाधीजी के पौत्र का नाम है कान्ति गाधी। प्रारम्भ मे वह गाधीजी के पास सेवाग्राम मे रहता था, लेकिन उसे वहा का त्यागमय जीवन रुचता नही था। वह महत्त्वाकाक्षी युवक था।

जानता था कि अगर यहां रहा तो उसके स्वप्न स्वप्न ही बने रहेगे। इसलिए एक दिन बड़े संकोच के साथ उसने अपनी समस्या गांधीजी के सामने रखी। गांधीजी कहा, "तुझे यहां रह-कर देश-सेवा की दीक्षा लेनी है। केवल व्यक्तिगत मौज-शौक की बात नही सोचनी है।"

सहसा वह कुछ उत्तर नही दे सका। लेकिन उसके मन का असन्तोष कम नही हुआ। एक दिन उसने फिर कहा "इस तरह खादी का गमछा लपेटे फिरना मुझे पसन्द नही है। यहां मेरा विकास रुक रहा है। मै तो कालेज में जाकर पढ़ूगा और बड़ा आदमी बनूगा। मैं बम्बई जाना चाहता हू।"

भी नही दिला सकूगा।"

कांति ने कहा, 'तो आप अपने पास से दे दीजिये।"

गाधीजी बोले, "मेरे पास तो अपना कुछ है ही नही।"

काति ने कहा, "तो मै बम्बई कैसे जाऊंगा ?"

गांधीजी ने उसी सहज भाव से उत्तर दिया, "हा, यह प्रश्न है, लेकिन..."

गांधीजी ने कुछ नही किया। यह दूसरी बात है कि महादेव-भाई ने उसे अपनी जेब से बीस रुपये दे दिये।

: ३७ :

आज हमारे जीवन से कला गायब हो गई है

एक दिन गाधीजी मि० पोलक के साथ हाथ के कागज के कारखाने आदि देखने के लिए गये। और भी बहुत-सी वस्तुए देखी। डा० हरिप्रसाद देसाई उनके साथ थे। उस यात्रा मे उन्होने अहमदाबाद की गन्दी गलियां भी देखी। उन्हे देखकर बोले, "आज हमारे जीवन से कला गायब हो गई है। ऋषिकेश और लक्ष्मण भूला जैसे तीर्थो मे लोग कार्युगेटेड आयरन शीट्स का इस्तेमाल करते है। क्या उससे वहा का प्राकृतिक सौन्दर्य विकृत नही होता ?"

जब उन्होने खेतरपाल की गली का जैन मन्दिर देखा। उन्हे और भी दु ख हुआ। चित्रित दीवारे, रगविरगे चौक और उनके

बीच में एक छ: पैसे की लालटेन। वह खीज उठे, लेकिन वहींपर उन्होंने कई गलीचे देखे। उनपर जो चित्र बने थे, उनके लिए प्राकृतिक रंगों का ही प्रयोग किया गया था। यह देखकर वह बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, और लिखा भी, "यहां के धनवान लोग जो अपना पैसा विदेशी कला के लिए खर्च करते हैं, उनसे मेरी सिफारिश है कि वे एक बार इन गलीचों को देखें।"

: ३८ :

स्वतन्त्रता का अर्थ स्वेच्छाचार नहीं होता

कैसे-कैसे लोग गांधीजी के पास आते थे। सुखी और दुखी, जीवन में कुछ करनेवाले और जीवन से हताश। हताश व्यक्तियों को सहानुभूति की विशेष आवश्यकता होती है। गांधीजी से वही सहानुभूति उन्हे मिलती थी। एक बार एक ऐसी ही बहन आश्रम में आई। वह बहुत दुखी थी और विशेष रूप से गाधीजी के पास रहना चाहती थी। उसे आश्रम के कार्यक्रमो में कोई रस नहीं आता था। बस, गाधीजी की व्यक्तिगत सेवा-सुश्रूषा मे लीन रहती थी। कई बार तो ऐसा अनुभव होता था कि वह आश्रम के अनिवार्य नियमो का पालन नही कर पा रही। एक दिन किसी कारणवश उसे बाहर जाना था। उसने गांधीजी से अनुमति मागी। गांधीजी ने कहा, "मेरी अनुमति ही काफी नही है। तुम्हें आश्रम के मत्री से अनुमति मागनी चाहिए।"

उस महिला को यह बात अच्छी नहीं लगी। बोली, "मैं तो

आपकी सेवा के लिए यहां रहती हू। मुझे मंत्री की अनुमति की क्या आवश्यकता है ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "सस्था मे रहने के लिए कुछ नियम होते है। वहा रहने पर हरेक बात की अनुमति बहुत आवश्यक है। स्वतन्त्रता का अर्थ स्वेच्छाचार या किसी एक व्यक्ति का आश्रय नही होता, समाज मे रहनेवाले को समाज के अनुरूप ही व्यवहार करना चाहिए। ऐसा होने पर ही कोई सस्था सस्था कही जा सकती है, नही तो वह एक ही व्यक्ति का राज्य हो जायगा। जो व्यक्ति अपने द्वारा आप बधता है वही बन्धन से छूटता भी है। इन सब बातो को समझ लेने के बाद जो कुछ तुझे ठीक मालूम हो वही करना। मैंने इस दुनिया में अपने से आजाद किसीको नही देखा, लेकिन मैंने अपने-आपको बांधकर अर्थात् नियम बनाकर, उनका पालन करके, अपनी स्वतन्त्रता की साधना की है।"

: ३९ :

कांग्रेस का काम करनेवाले छिपकर काम करना बन्द कर दें

गांधीजी उन दिनो यरवदा-जेल में नजरबन्द थे। वही सर्किल मे भाई प्रतापसिहजी भी थे। वह जेल से छूटने वाले थे। छूटने से एक सप्ताह पहले एक दिन दोपहर को गाधीजी ने उन्हे बुला भेजा। भाई प्रतापसिहजी ऊचे पूरे सिख थे। उन्हे देखकर

गाधीजी बहुत खुश हुए। इधर-उधर की बातचीत के अनन्तर सरदारजी ने गांधीजी से कहा, "कोई सन्देश दीजिये।"

गाधीजी बोले, "सन्देश मुझसे दिया ही नही जा सकता।"

सरदारजी ने कहा, "मेरे अपने सन्तोष के लिए दीजिये।"

गांधीजी बोले, "हा, एक सन्देश दे सकता हू, क्योंकि उसे सार्वजनिक रूप से देने में भी मुझे कोई सकोच नही होगा। वह यह है कि कांग्रेस का काम करनेवाले छिपकर काम करना बन्द कर दे। हमारा धर्म तो गिरफ्तार हो जाना है। फिर छिपे-छिपे किसलिए फिरे? इससे जनता मे डर के सिवा और कुछ पैदा नही हुआ है।"

यह सुनकर सरदारजी नें कहा, "तब तो जितने काम करनेवाले है, सब जेल मे चले जायगे। बाहर कोई भी नहीं रहेगा।"

गाधीजी बोले, "यह तो अच्छा है। जब सबकुछ ईश्वर पर छोड़ दिया, तब इन्सान की तदबीर कबतक और कहांतक साथ देगी? हमारे पास काम करनेवाले न हों तो यह बात सब लोग जान जायं। इसमे बुरा क्या है? मगर सारा समाज डरपोक बन जाय, यह मेरे लिए असह्य है। मै तो सरकार के द्वारा भी यह बात जाहिर कर सकता हूं। मगर करता नही हूं, क्योंकि सरकार इसका दुरुपयोग और अनर्थ कर सकती है।

ज़ेवर गये यह दुःख की बात नहीं

सन् १९२९ मे साबरमती-आश्रम मे एक लडकी रहने के लिए आई। उसका विवाह हो चुका था। वह घूघट निकालती थी। मिल के कपडे पहनती थी। सोने-चादी के जेवर भी बदन पर थे। आश्रम मे आकर उसने घूघट निकालना छोड़ दिया। खादी के कपडे पहनने लगी और जेवर उतारकर बक्स मे बन्द कर दिये, लेकिन उन्हे उसने दफ्तर मे जमा नही करवाया। अपने पास ही रखा।

एक दिन उसका चाबी का गुच्छा खो गया। किसी तरह पेटी का ताला तोड़ा, तो पाया कि उसमे चादी के कडे नही है। लड़की रोने लगी। गांधीजी उन दिनो यात्रा पर थे। उन्हे भी इस बात की सूचना दी गई। उस लडकी ने स्वयं अपनी टूटी-फूटी भाषा मे गांधीजी को पत्र लिखा था। तुरन्त उसका उत्तर आया :

चि० कलावती,

तुम्हारे जेवर गये, यह दु ख की बात नही, परन्तु सुख की बात मानो। तुमने आश्रम के नियम का उल्लघन किया, इसलिए तुमको भगवान ने शिक्षा दी। तुम्हारे लिए जेवर का कोई उपयोग नही था। अब मेरा कहा मानो तो जो जेवर पहनती हो उसे भी उतार दो। उसे बेचो। उसके पैसे बैंक मे रखो, तुम्हारा चित्त ''न होगा।

इस पत्र ने तो लड़की का जैसे काया-पलट कर दिया। चोरी के दु:ख को भूलकर उसका मन प्रसन्न हो आया और यह बात उसने स्वय गांधीजी को लिख दी। गांधीजी ने तुरन्त उसका उत्तर देते हुए लिखा :

"...यदि हम अच्छी तरह सोचे, तो पता चलता है कि इस जगत में एक भी चीज किसी एक शख्स की नही है। किसी चीज को अपनी मानने के वदले यदि हम ईश्वर की माने तो हमारा सारा दु ख मिट जाता है। हम ईश्वर की तरफ से प्रतिनिधि यानी रक्षक है, यह मानकर हम उसकी रक्षा करे। यह हमारा धर्म हो जाता है। ऐसा करते हुए वह चीज नष्ट हो जाय या खो जाय तो हमें दुखी नही होना चाहिए।"

: ४१ :

मैं यहां नहीं रुक सकता

एक बार गाधीजी महाराष्ट्र का दौरा कर रहे थे। मीरज मे एक छोटा-सा कार्यक्रम था। वह जल्दी ही पूरा हो गया। लेकिन वहा के लोग चाहते थे कि गाधीजी कुछ देर और वहा रहे।

गाधीजी ने उनका आग्रह स्वीकार नही किया। वे लोग अब भी अपनी हठ पर अड़े रहे। गांधीजी को रोकने का उन्होने एक और उपाय ढूढ निकाला। जाने का समय हो जाने पर भी कार कही नही दिखाई दी। गांधीजी ने पूछा, "गाड़ी कहां है ?"

लोगो ने उत्तर दिया, "वह तो बिगड गई है ।"

गाधीजी बोले, "तब तो मुझे इसी क्षण अगले पडाव के लिए रवाना होना चाहिए। मै यहा नही रुक सकता ।"

यह कहकर वह पैदल ही चल पडे। कुछ स्वयसेवक भी साथ चल दिये। गाधीजी ने उनसे पूछा, "अगले पडाव का रास्ता किधर से जाता है ?"

वे लोग अब भी गाधीजी को नही समझ पाये थे । शरारत करने पर तुले हुए थे। उन्होने उन्हे गलत रास्ता बतला दिया । उन दिनो गाधीजी जूते नही पहनते थे। गोखलेजी के स्वर्गवास के बाद उन्होने एक वर्ष जूते न पहनने का व्रत लिया हुआ था। वह नगे पैर ही उस रास्ते पर बढ गये। आगे मार्ग अवरुद्ध था, लेकिन वह रुके नही। खेत मे से होकर उसी दिशा मे चलते रहे। वहा काटे बिछे हुए थे। वे उनके पैरो मे चुभने लगे। यह देखकर वे स्वयसेवक लज्जा से गड गये। उनके दु ख की कोई सीमा नही रही। उन्होने क्षमा मागी। उन्हे सही रास्ता बताया और एक-दो आदमियो को भेजकर मोटर का प्रबन्ध करने के लिए भी वे तैयार हो गये।

: ४२ :

उन्हें ले आओ

उस वर्ष (अप्रैल, १९३६) काग्रेस का अधिवेशन लखनऊ मे होनेवाला था। गाधीजी उन दिनो अस्वस्थ थे। उनका खून

का दबाव बढ गया था। इसलिए लखनऊ जाने से पहले वह लगभग तीन हफ्ते आराम करने के लिए अपने पुत्र के पास हरिजन-निवास दिल्ली में ठहरे, लेकिन आराम मिलना क्या आसान था! दिन-भर मिलनेवाले आते रहते। फिर कार्यसमिति की बैठक भी वही पर हुई। इसके अतिरिक्त दर्शनार्थियों की भीड भी कम नही थी।

एक दिन एक स्त्री और पुरुप सवेरे ही वहां आये और यह सकल्प करके बैठ गये कि जबतक गाधीजी के दर्शन नही कर लेगे तबतक भोजन नही करेगे। पहले तो किसीने उनकी चिन्ता नही की, लेकिन सवेरा बीता, दोपहर भी बीत गई, संध्या होने को आई, वे दोनों इसी प्रकार भूखे-प्यासे बैठे रहे। जिनके हाथ मे वहां का प्रबन्ध था, उन्होने फिर भी उनकी ओर नही देखा। तव सहसा गाधीजी ने श्री चांदीवाला को बुला भेजा। कहा, "मुझे पता लगा है, एक दम्पति सुवह से यहा भूखे-प्यासे बैठे है। उनकी हठ है कि वह दर्शन करके ही यहा से जायगे। अब तुम उन्हे ले आओ।"

: ४३ :

मेरे लिए तो सच्ची गोलमेज परिषद यह है

सन् १९३१ में जब गाधीजी गोलमेज परिषद मे भाग लेने लन्दन गये, तब वह मिस म्यूरियल लेस्टर के वो स्ट्रीट में स्थित किगस्ले हॉल मे ठहरे थे। यह गरीबों की बस्ती मे है। मित्रों

को इस बात की शिकायत थी कि गाधीजी महल और होटल छोडकर इतनी दूर गरीबो के बीच मे रहते है। वे सेट जेम्स महल के निकट ही अपने घर उन्हे देने के लिए तैयार थे। लेकिन गाधीजी के लिए गरीबो का घर ही उनका अपना घर बन गया था। वहां घूमते समय जो मित्र उन्हे मिलते थे, जो बच्चे किसी भी क्षण उनको आकर घेर लेते थे, उन्हे छोडने में वह असमर्थ थे। उन्हे ऐसा लगता था जैसे वह अपने आश्रम मे है और बच्चो के सहज परन्तु गम्भीर प्रश्नो का उत्तर देते हुए वह सत्य और प्रेम का सदेश फैला रहे है।

एक बच्चे ने पूछा, "मि० गाधी, आपकी भापा क्या है ?"

गांधीजी ने उत्तर मे उसे अग्रेजी और हिन्दी भाषाओ के समान शब्दो की व्युत्पत्ति समझाई और कहा, "हम सब एक ही पिता के पुत्र है।"

बच्चो के बहुत-से प्रश्न थे। जैसे वह कच्छ क्यो धारण करते हैं और उनके बीच में क्यो रहते हैं ? गाधीजी सभीका उत्तर देते। अपने बचपन की बाते करते। उन्हे बताते कि घूसे का जवाब घूसे से देने की अपेक्षा घूसे से न देना कितना अच्छा है।

इसी तरह जब मित्रो का आग्रह बढा तो इन सब बातो की चर्चा करते हुए गाधीजी ने उनसे कहा, "मेरे लिए तो गोलमेज परिषद यह है। मै जानता हू कि मेरे ऐसे मित्र है, जो मुझे घर दे सकते है। मेरे लिए उदारता से पैसे खर्च कर सकते है, किन्तु मै कुमारी लेस्टर के घर मे सुखी हू। जिस प्रकार का जीवन व्यतीत करने का मेरा ध्येय है, उसका स्वाद मुझे यहां मिलता है। उन्होने मेरे लिए कोई नया खर्च नही उठाया। हां, अनेक

असुविधाएं उठाई है। अपने सिर पर बहुत परिश्रम ओढ लिया है। वे लोग मेरे लिए अपनी कोठड़िया खाली करके बरामदे में सोते है। मेरे कारण जो काम बढ़ गया है, उसे वे प्रसन्नतापूर्वक कर लेते है। ऐसी दशा में मै यह स्थान कैसे छोड़ सकता हू !"

: ४४ :

बड़े लोग अक्सर कान में ही बात रख लेते हैं, मगर गरीब…

इग्लैण्ड से भारत लौटते समय महात्मा गाधीजी इटली भी रुके थे। वहांपर उनकी भेट टालस्टाय की सबसे बडी लड़की से हुई थी। जब वह आई तो कुर्सी खीचकर गांधीजी के पास आ बैठी। गाधीजी उस समय चर्खा कात रहे थे। शिष्टाचार के अनन्तर वह बोली, "यह तो आप जानते ही है कि मेरे पिता आपके बारे में बहुत सोचा करते थे।"

गाधीजी ने उत्तर दिया, "उनके पत्रों को मै बहुत ही कीमती समझता हूं। उनकी तरफ से वे पत्र आपने लिखे थे या आपकी बहन ने ?"

सिन्योरा आल्बर्टनी ने उत्तर दिया, "हम सभी उन्हे काम मे मदद करती थी।"

बात को आगे बढाते हुए वह बोली, "मेरे पिता कहा करते थे कि अगर मै किसीको नही समझ सका तो टालस्टायवादियो को। वह नही चाहते थे कि लोग उनके अनुयायी बनें। लोग

अहिसा का पालन करे। यही उनकी इच्छा थी। आपका और उनका कार्यक्रम इतना अधिक व्यावहारिक होने पर भी आप दोनो को स्वप्नदृष्टा, पागल और बेवकूफ कहा जाता है, यह विचित्र बात है।"

फिर सहसा वह पूछ बैठी, "अग्रेज आपको कैसे लगे, गाधीजी?"

गाधीजी ने उत्तर दिया, "मैने वहा खूब मजे मे अपना समय व्यतीत किया है। मै बहुत अच्छे-अच्छे लोगो से मिला हू।"

सिन्योरा को जैसे बहुत गहरा सतोष हुआ। बोली, "मुझे बहुत ही खुशी है, मुझे अग्रेज प्रामाणिक और निष्पक्ष मालूम होते है।"

एक क्षण रुककर गाधीजी ने उत्तर दिया, "हा, ये लोग प्रामाणिक और निष्पक्ष है।"

सिन्योरा बोली, "ये दो गुण उनमे किस तरह आ पाये है? मन की स्वतन्त्रता की बदौलत ही तो?"

गाधीजी ने कहा, "यह तो स्पष्ट ही है कि इन लोगो मे मन की स्वतन्त्रता बहुत है। लकाशायर और लन्दन के पूर्वी भाग के मजदूर मुझे बात को जल्दी समझनेवाले और अकलमन्द मालूम पडे। मैं समझता हू कि इडिया आफिस के अधिकारियों की अपेक्षा इन मजदूरो के मन भारतीयो की आकाक्षाओ को अधिक अच्छी तरह समझ सके थे। बडे लोग अक्सर कान मे ही बात रख लेते है, मगर गरीब लोग सुनते और समझते है।"

दुर्गुणों को जला देना ही सच्चा सतीत्व है

सेठ जमनालाल बजाज गांधीजी के 'पांचवे पुत्र' के रूप में प्रसिद्ध थे। अचानक ११ फरवरी, १९४२ को उनकी मृत्यु हो गई। सूचना पाकर गांधीजी तुरन्त सेवाग्राम से वर्धा आये। सेठजी की धर्मपत्नी, श्रीमती जानकीदेवी बजाज, भाव-विह्वल हो आई थी। गांधीजी को देखकर वह बोली, "बापूजी, आप उनके पास होते तो ये नही जाते। अब तो आप उन्हे जीवित कर दीजिये। क्या आप उन्हे जिला नही सकते ?"

गहन गम्भीर स्वर में गांधीजी बोले, "जानकी, तुम्हे अब रोना नही है। तुम्हे तो हँसना है और बच्चों को भी हँसाना है। जमनालाल तो जिन्दा ही है। जिसका यश अमर हो, उसकी मृत्यु कैसी ! उसने परमार्थ की जिन्दगी बिताई। जो काम उसने अपने कंधों पर लिया था, उसे अब तुम सभालो। मै तुम्हें झूठा धीरज देने नही आया। जमनालाल बजाज का शरीर मर गया, पर असल जमनालाल तो जिन्दा ही है और आगे के लिए उसे जिन्दा रखना हमारा काम है।"

लेकिन जानकीदेवी को सांत्वना देना आसान काम नही था। उसी तरह विकल-विह्वल स्वर मे उन्होने कहा, "बापूजी, मै सती होना चाहती हू, अनुमति दीजिये।"

गांधीजी बोले, "शरीर को जलाने से क्या फायदा ! वह तो तुच्छ है, मिट्टी है। अपने सब दुर्गुणो को जला देना ही

सच्चा सतीत्व है। अपने सब दुर्गुणो को चिता मे होम दो। फिर जो बाकी बचेगा वह शुद्ध कचन रहेगा। उसको कैसे जलाया जाय ? उसे तो कृष्णार्पण ही किया जा सकता है।"

यह सुनकर न जाने जानकीदेवी मे कहा से शक्ति आ गई। बोल उठी, "बस, आज से मै और मेरा सबकुछ कृष्णार्पण।"

: ४६ :

श्रीमती दास को बुरा लगेगा

सन् १९२४ मे गाधीजी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए दिल्ली मे उपवास किया था। वहा से वह कलकत्ता गये थे और देशबन्धु चित्तरजन दास के घर ठहरे थे। उनके दल में और व्यक्तियो के अतिरिक्त श्री राधाकृष्ण बजाज भी थे।

बगाली लोग मछली खाते है, लेकिन राधाकृष्ण परम वैष्णव है। दासबाबू ने गाधीजी के दल के लोगो के लिए शाकाहारी भोजन का प्रबन्ध किया था। बनानेवाली भी सब शाकाहारी थी, लेकिन राधाकृष्ण का सनातनी मन इस स्थिति से समझौता नही कर सका। उन्होने बापूजी से कहा, "मै यहां भोजन नही कर सकता। मुझे अपने मित्र के यहा जाने की आज्ञा दीजिये।"

गावीजी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार नही की। कहा, "तुम ऐसा करोगे तो श्रीमती दास को वुरा लगेगा।"

राधाकृष्ण नही जा सके। एक ओर जहा गाधीजी छोटी-छोटी वातो मे दूसरे के भले-वुरे का वहुत ध्यान रखते थे, दूसरी ओर अपने सेवको के प्रति वह उतने ही कठोर भी थे।

तुम्हारी थाली में जो नमक है, उसे निकाल दो

एक बार एक ग्रामीण कार्यकर्ता अपने इलाके में हरिजन-कार्य के संबंध में गांधीजी से राय लेने के लिए आये। संभवतः वह आंध्र प्रदेश के थे। रोगी भी थे। हरिजन-कार्य के अतिरिक्त गांधीजी ने उनसे उनके रोग के संबंध में काफी पूछताछ की। सबकुछ जान कर वह बोले, "आप बहुत अधिक नमक तो नहीं खाते ?"

कार्यकर्ता ने उत्तर दिया, "जी नहीं, मैं बहुत कम नमक खाता हूं।"

गांधीजी बोले, "तुम्हें नमक माफिक नहीं आता। अच्छा हो, यदि तुम नमक बिलकुल ही छोड़ दो।"

उस दिन उस भाई ने आश्रम में ही भोजन किया। गांधीजी ने उन्हें अपने पास बैठाया। परोसी हुई थाली उनके सामने रखी गई। उसके बाद गांधीजी ने स्वयं कुछ चीजें परोसीं और मुंह खोलने से पहले उनसे कहा, "तुम्हारी थाली में जो नमक है, उसे निकाल दो।"

लेकिन जाते समय वह भाई बहुत लज्जित हुए। उन्हे छोडने के लिए कमलनयन बजाज उनके साथ जा रहे थे। उन्ही से उन भाई ने कहा, "कैसी अजीब बात है, गाव का रहनेवाला होकर भी मै यह नही महसूस कर सका कि यदि नमक थाली मे से नही निकालूगा, तो वह बेकार जायगा। जिन्दगी मे इससे बडा पाठ मैने कभी नही सीखा।"

: ४८ :

कोई बात न समझे हो, तो मुझसे पूछ लो

द्वितीय विश्व-युद्ध के समय सन् १९४० मे व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू हुआ था। सेठ जमनालाल बजाज इसी आन्दोलन मे भाग लेने के कारण गिरफ्तार हो गये थे। उस समय उनके छोटे पुत्र रामकृष्ण बजाज कुल सत्तरह वर्ष के थे। उन्होने चाहा, वह भी इस सत्याग्रह में भाग ले, लेकिन गांधीजी ने उन्हे आज्ञा नही दी, क्योकि उनकी आयु अठारह वर्ष से कम थी।

रामकृष्ण बजाज ने फिर आग्रह किया। कहा जा सकता है कि उन्होने हठ पकड ली कि उन्हे आज्ञा देनी ही पडेगी। गाधीजी उनका उत्साह भग नही करना चाहते थे। इसलिए उन्होने रामकृष्ण को दो दिन बराबर सेवाग्राम मे बुलाया और नाना प्रकार के प्रश्न पूछकर उनकी परीक्षा लेते रहे। वह बोले, "एक बार जेल जाने से काम नही चलेगा। जबतक आन्दोलन चलता है, बराबर जेल जाना होगा।"

रामकृष्ण ने कहा, "मुझे मंजूर है, लेकिन आप समय का कुछ अन्दाज तो देंगे।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "समय का अन्दाज कौन दे सकता है ? लेकिन पांच वर्ष की तैयारी होनी चाहिए।"

रामकृष्ण ने कहा, "मै तैयार हूं।"

गांधीजी ने इजाजत दे दी। यही नही, वर्धा के डिप्टी कमिश्नर को उन्होंने स्वय चिट्ठी लिखी। इसके अतिरिक्त अपने हाथ से एक वक्तव्य लिखा। उसे रामकृष्ण को देते हुए वह बोले, "गिरफ्तार होने पर अदालत मे जब तुम्हारी पेशी हो तब यह वक्तव्य तुम्हे देना होगा। इसे पढ लो। कोई वात न समझे हो तो मुझसे पूछ लो।"

पढने के बाद फिर वोले, "इस वक्तव्य में लिखी गई किसी वात से अगर तुम असहमत हो, तो मुझे बता दो। मै इसे वदल दू।"

एक सत्तरह वर्ष का वालक गाधीजी के ये वाक्य सुनकर गद्गद हो गया। बच्चे से भी वह कैसा वरावरी का नाता रखते थे। उनके इस व्यवहार से रामकृष्ण का मन उत्साह से भर गया और आगे आनेवाला जेल का जीवन उन्हे तनिक भी नही अखरा।

तुम्हें कह देना चाहिए था कि तुम नहीं आ सकोगे

सन् १९३४ मे अपनी हरिजन यात्रा के समय गाधीजी बगलौर भी गये थे। प्रोफेसर मलकानी उनके साथ थे और वह कुमार पार्क पैलेस मे ठहरे थे। प्रो० मलकानी सजे हुए और सुन्दर कमरो मे ठहरे थे। लेकिन गाधीजी ने बरामदे मे एक कोने मे ही रहना स्वीकार किया था।

जैसा कि सदा होता था, वह हरिजनो के लिए फण्ड इकट्ठा करते रहते थे। महिलाओ से उनकी चूडियां, हार, अगूठियां कुछ भी लेने से उन्हे परहेज नही था। वे उन्हे मिल भी तुरन्त जाती थी। उसके बाद वह उन्हे नीलाम कर देते थे। एक दिन गाधीजी सभी गहने नीलाम नही कर सके। उन्होने घोपणा की कि बचे हुए गहनो का नीलाम कल ११ बजे प्रो० मलकानी करेगे।

लेकिन भाग्य की बात, मलकानीजी को ज्वर हो आया और अपनी शैया मे लेटे हुए वह गहने नीलाम करने की बात भूल गये। नियत समय और स्थान पर कुछ ग्राहक आये, लेकिन वहा तो कोई भी नही था। वे गाधीजी के पास पहुचे। गाधीजी ने तुरन्त मलकानीजी को सूचना दी। अब उन्हे याद आया। क्षमा-याचना करते हुए उन्होने लिखा, "ज्वर हो जाने के कारण मै इस बात को भूल ही गया था।"

गाधीजी का उत्तर आया, "लेकिन तुम्हें किसीसे कह देना चाहिए था कि तुम नही आ सकोगे।"

उसके बाद उन्होने प्रो० मलकानी को आदेश दिया कि वह उन ग्राहको को ढूढ़े, उनसे क्षमा-याचना करे और गहनों को नीलाम करे।

: ५० :

मैं प्रतिदिन तुम्हें आधा घंटा दे सकता हूं

जून १९३० में गांधीजी जिस समय यरवदा-जेल में थे, उस समय काकासाहब कालेलकर भी कुछ महीनो के लिए उनके साथ रहे थे, लेकिन उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा नही था। कुछ दिन तो वह चारपाई पर लेटे रहे। स्वयं गाधीजी उनकी देखभाल करते थे और अपने पत्रों में बराबर आश्रमवासियों को उनके स्वास्थ्य की सूचना देते रहते थे।

एक दिन काकासाहब स्वस्थ हो गये। गांधीजी ने उनसे कहा, "मै जानता हूं, तुम सदा कुछ-न-कुछ लिखते रहते हो और बोलकर लिखाते हो। यहा हम केवल दो ही व्यक्ति है। तुम प्रतिदिन आधा घंटा मुझे बोलकर लिखा सकते हो। मै तुम्हें आधा घटा दे सकता हूं।"

यह सुनकर काकासाहब स्तब्ध रह गये। बड़ विनम्र भाव से उन्होने कहा, "क्या मेरे पास ऐसा कुछ है, जो मैं आपको बोलकर लिखा सकू? आपके प्रस्ताव ने मुझे गद्गद् कर दिया है।

मैं अपनी क्षुद्रता को जानता हूं ।"

गाधीजी ने उत्तर दिया, "नही-नही, मै जानता हू, तुम्हे सहायता की आवश्यकता है। तुम हमेशा किसी-न-किसीको बोलकर ही लिखाते हो। यहा मेरे अतिरिक्त और कोई भी नही है और मैं आसानी से आधा घटा तुम्हारे लिए काम कर सकता हू ।"

कहने की आवश्यकता नही कि काकासाहब ने उस प्रस्ताव पर कोई ध्यान नही दिया।

: ५१ :

बिना धोये आलू काटना तुम कैसे सहन कर सकते हो ?

गाधीजी की दृष्टि इतनी व्यापक थी कि आश्चर्य होता था। देश की बडी-बड़ी समस्याओ को सुलझाते हुए भी वह अपने आश्रम के रसोईघर के छोटे-से-छोटे कामो मे खूब रस लेते थे। कभी-कभी तो घटो चक्की दुरुस्त करते रहते थे। चावल और दूसरे अनाज की सफाई उनके ही कमरे मे होती थी। रसोईघर मे जाकर स्वयं वहा की सफाई और व्यवस्था देखते थे। ऐसे ही समय उन्होने एक दिन देखा कि रसोईघर के एक अधेरे कोने की छत में मकडी का जाला लगा हुआ है। उसकी तरफ इशारा करते हुए उन्होने रसोईघर के व्यवस्थापक बल-वन्तसिह से कहा, "देखो, वह क्या है ? रसोईघर मे जाला हमारे

लिए शर्म की बात है।"

बलवन्तसिंह को बड़ी लज्जा आई, लेकिन क्या यह एक ही दिन की बात थी ! दूसरे दिन आकर उन्होंने देखा कि बलवन्त सिंह और उसके साथी बिना धुले हुए आलू काट रहे हैं। तुरन्त बोले, "बलवन्त, बिना धोये आलू काटना तुम कैसे सहन कर सकते हो ? उनमें चारों तरफ मिट्टी लग जाती है। पहले उनको खूब रगड़कर धोना चाहिए और फिर काटना चाहिए।"

बलवन्तसिंह की क्या दशा हुई होगी, इसकी कल्पना ही की जा सकती है।

: ५२ :

इसको अभी नया करके दो महीने चलाऊं तो ?

नोआखाली की ऐतिहासिक यात्रा के समय दिसम्बर १९४६ मे गांधीजी श्रीरामपुर मे ठहरे हुए थे। उनके पास एक अंगोछा था। बीच में से फटकर वह बिलकुल जर्जर हो गया था। मनु गांधी ने बहुत प्रयत्न किया कि उसमें जोड़ लगाया जा सके, लेकिन वह सफल नही हो सकी। अन्त में एक नया अंगोछा मंगवाकर उसने गांधीजी को दिया।

उसे देखकर गांधीजी बोले, "नही, अभी पुराना अंगोछा ही काम देगा।"

मनु को विश्वास था कि उस अंगोछे में अब जोड़ नहीं ल

सकता। रफू करना तो असम्भव है, इसलिए उसने तुरन्त उत्तर दिया, "बापूजी, इसे तो छुट्टी देनी ही होगी। अब इसमे आप क्या करेंगे ?"

गांधीजी हँसे और मनु के कान खीचकर बोले, "इसको अभी नया करके दो महीने चलाऊ तो ?"

मनु ने उत्तर दिया, "आप चला ही नही सकते।"

गांधीजी ने तुरन्त उसे उसी हालत मे डबल किया और ठीक चौकोर बनाकर ,अच्छी तरह जोडा। फिर रफू कर दिया। अब तो सचमुच उसकी उम्र दो महीने तो बढ ही गई। वह बहुत सुन्दर बन गया। लेकिन मनु ने कहा, "इसे तो मै नमूने के रूप में अपने पास रखूगी। आप नया अगोछा ही ले लीजिये।"

उसने उसे अपने पास रख लिया।

: ५३ :

हिन्दी उतनी ही उपयोगी है जितनी आपकी यह साइंस

नन्दी (बेंगलोर) प्रवास के अवसर पर एक दिन सुविख्यात वैज्ञानिक सर चन्द्रशेखर रामन गांधीजी से मिलने आये। उनकी पत्नी पहले ही वहां मौजूद थी और वह महात्माजी से हिन्दी में बातें कर रही थी। सर चन्द्रशेखर ने हिन्दी की खिल्ली उड़ाते हुए पूछा, "यह हिन्दी क्या कुछ उपयोगी है ?"

गांधीजी ने कहा, "इसमे सन्देह ही क्या है ! हिन्दी उतनी

ही उपयोगी है, जितनी आपकी यह साइंस ।"

यह सुन कर सब लोग खिलखिलाकर हँस पड़े । इधर-उधर की बातें करते हुए सर चन्द्रशेखर ने कहा, "हिन्दुस्तान के जन-साधारण की भाषा कौनसी हो सकती है ? क्या वह अंग्रेजी नहीं हो सकती ?"

शायद यह बात उन्होंने उतनी गम्भीरता से नहीं कही थी, जितनी गाधीजी को चिढ़ाने के लिए । गाधीजी बोले, "हिन्दुस्तान के करोड़ों आदमी जो बगैर सीखे ही हिन्दी जानते है अगर वे अंग्रेजी सीखने का प्रयत्न करे तो क्या आपके खयाल में उनके लिए दुर्भाग्य की बात न होगी ?"

सर चन्द्रशेखर तुरन्त बोल उठे, "मुझे खुशी है कि राष्ट्र-भाषा हिन्दी बडी तेजी से दक्षिण भारत मे प्रगति कर रही है । मै हिन्दी भी जानता हू, महात्माजी । मैं उसे अच्छी तरह समझ लेता हूं । मालवीयजी महाराज मेरे हिन्दी के गुरु है । जब मै काशी मे था तब कभी-कभी घंटो उनकी सुन्दर हिन्दी सुनने का मुझे अवसर मिलता था और मुझे हिन्दी सीखनी ही चाहिए थी; पर मै हिन्दी बोल नही सकता ।"

: ५४ :

अनियमित कतवैया रोगी कतवैया है

उन दिनों यात्रा करते हुए गांधीजी कोडल नाम के एक गाव में पहुंचे । वहां उन्हे कुछ जुलाहे दिखाई दिये । वह उन्हें

वताना चाहते थे कि सूत कैसे काता जाता है। इसलिए उन्होने अपना चर्खा मागा। श्री राजकृष्ण वसु, जो बड़े उत्साही नवयुवक थे, गाधीजी का चर्खा लेने के लिए दौडे और अपनी समझ मे उसे ठीक करके ले आये। उसे देखकर गाधीजी ने पूछा, "इस चर्खे को किसने ठीक किया है ?"

राजकृष्णवाबू बोले, "मैने।"

गाधीजी ने कहा, "यह तो चलता ही नही है। अगर आप ठीक करना नही जानते है, तो इसे हाथ नही लगाना चाहिए था।"

फिर विनोद के स्वर में बोले, "यह 'स्टार आफ उत्कल' का सम्पादन करना नही है।

वह स्वय चर्खा सुधारने लगे। काफी देर लग गई। श्रीयुत वेकटप्पैय्या यह देखकर वोले, "आप इसे छोड क्यों नही देते ? फिर ठीक कर लीजियेगा या कोई और ठीक कर देगा। आपको और जरूरी काम करने हैं। आपके पास समय नही है।"

गाधीजी ने उत्तर दिया, "जिन्हे वेकार कामो मे मदद करने मे समय नही रहता, उन्हे जरूरी कामो के लिए हमेशा समय मिल जाता है।"

इतना कहकर वह राजकृष्णवाबू की ओर मुडे। पूछा, "क्या आपने कभी चर्खा चलाया है ?"

वह वोले, "हा, महात्माजी, मै सूत कातता हू, लेकिन मेरा चर्खा दूसरी तरह का है।"

गाधीजी ने फिर पूछा, "आप रोज कितना कातते होगे ?"

राजकृष्णवाबू ने उत्तर दिया, "कभी पद्रह मिनट, कभी

आधा घंटा और कभी एक घंटा भी, लेकिन मै नियमित रूप से नही कातता ।"

इसपर गाधीजी बोले, "क्या आप रोज खाना खाते है ? मुझे आशा है कि आप खाते है । जो रोज नही खाते, वे रोगी कहे जाते है। इसी प्रकार अनियमित कतवैया रोगी कतवैया है।"

तबतक चर्खा ठीक हो गया था । गांधीजी श्री वेकटप्पैय्या की ओर मुडे और बोले, "क्या आप समझते है, यदि मै चर्खे को ठीक नही करता तो क्या यह जान पाता कि चर्खा कहां बिगड़ा है और उसे कैसे सुधारना होगा ?"

अब वह जुलाहों से बाते करने में निमग्न हो गये । उन्हें क्या मिलता है ? कैसे रहते है ? यह सब पूछा और फिर कहा, "यदि आपमें से कोई आगे सीखना चाहे, तो साबरमती-आश्रम में काम सीखने के लिए आ सकते है। शर्त केवल यही है कि सीख-कर फिर औरो को सिखाना ।"

: ५५ :

सुधारक अपने घर से काम करने की बात नहीं सोचते

गाधीजी अपने मद्रास-प्रवास में श्री नटेसन के घर ठहरे थे । एक दिन वह अपने साथ नायकर नाम के एक पंचम लडके को ले आये । कुछ समय पूर्व श्री नटेसन ने दलित-जातियो की एक सभा का सभापतित्व किया था और उच्च वर्ग के लोग अछूतों

पर जो अत्याचार करते है उनकी कड़े शब्दों मे निन्दा की थी। शायद यही सोचकर वह उस पचम लडके को ले आये थे। लेकिन श्री नटेसन के घर मे तो सब पुराने विचारों के लोग थे, विशेषकर उनकी वृद्धा मां। उस पंचम लड़के को घर मे देखकर वह हतप्रभ रह गई। उनकी दृष्टि में यह स्पष्ट ही अनाचार था।

श्री नटेसन बड़े परेशानी मे पड़े। स्थिति सचमुच विचित्र थी। लेकिन गाधीजी तो अपना काम करना जानते थे। कई दिन इसी प्रकार बीत गये कि अचानक वह लडका बीमार हो गया।

उस समय गांधीजी ने जिस प्रकार उसको सेवा की, उसे देखकर सब लोग चकित रह गये। वह उसके पास बैठे रहते थे। उसकी सार-सभाल करते थे। ऐसा वह तबतक करते रहे जबतक वह लड़का पूर्ण स्वस्थ न हो गया। उस समय श्री नटेसन ने देखा कि उनकी वृद्धा मा मे एक परिवर्तन आ रहा है। वह इस नई स्थिति को स्वीकार करती जा रही है। यह सबकुछ चुपचाप हुआ।

बहुत दिन बाद गाधीजी ने श्री नटेसन को लिखा, "तुमने देखा था कि माताजी का व्यवहार नायकर के प्रति कितना उदार और स्नेह भरा था। तुम्हे इस बात मे शका थी कि तुम उनके विचार बदल सकोगे। सुधारकों की यही आदत है। वे अपने घर से काम शुरू करने की बात नही सोचते।"

हमें शुभ कार्य में हिचकना नहीं चाहिए

सन् १९३४ में हरिजन-यात्रा के समय गांधीजी अजमेर गये थे। उन दिनों वहां के विख्यात नेता श्री अर्जुनलाल सेठी राजनैतिक मतभेदों के कारण एकान्त सेवन कर रहे थे। उनके एक मित्र ने महात्माजी को प्रेरित किया कि वह सेठीजी के घर जायं, जिससे उन्हे पता लग जाय कि महात्माजी के दिल मे उनके लिए पहले जैसा ही प्रेम है।

गाधीजी ने श्री हरिभाऊ उपाध्याय से पूछा, "क्यों, तुम्हारी क्या राय है ?"

हरिभाऊजी ने उत्तर दिया, "जाने में तो कोई हर्ज नहीं है, परन्तु मुझे यह विश्वास नही होता कि ऐसा करने से सेठी-जी की वृत्ति मे कोई विशेष अन्तर आनेवाला है।"

गांधीजी बोले, "पर तुम साथ चलोगे न ?"

हरिभाऊजी ने उत्तर दिया, "क्यों नही ! सेठीजी को मै अपना बुजुर्ग मानता हूं।"

गाधीजी बोले, "तो जाना ही ठीक है। तुम जैसा कहते हो वैसा ही नतीजा निकले तो भी हमें शुभ कार्य में हिचकना नही चाहिए। तात्कालिक परिणाम अच्छा न निकले, तो भी शुभ कार्य का जो परिणाम निकलेगा वह अच्छा ही होगा। बुरा हरगिज नही हो सकता।"

गांधीजी सेठीजी के घर पहुचे। उन्हे देखते ही सेठीजी और

उनकी धर्मपत्नी अपनेको भूल गये। प्रेम की विह्वलता मे उन्हे सूझ ही नही पडा कि क्या बोले और क्या करे। कुछ देर बाद इतना ही कहा, "मुझे कुछ नही कहना है। आप इन बच्चो के सिर पर हाथ रख दीजिये, जिससे वे देश के सच्चे सेवक बने।"

: ५७ :

क्या तुम मन्त्री होना चाहते हो ?

शायद यह १९३७ के प्रारम्भ की बात है। काग्रेस तबतक यह निश्चय नही कर पाई थी कि उसे नये विधान के अन्तर्गत पद स्वीकार कर लेने चाहिए या उसे सरकार से असहयोग कर लेना चाहिए। उसी समय एक दिन एक पत्रकार ने गाधीजी से पूछा, "बापूजी, क्या काग्रेस मन्त्रिमण्डल बनाना स्वीकार कर लेगी ?"

गाधीजी ने विनोद करते हुए उस पत्रकार से प्रतिप्रश्न कर दिया, "क्यो, क्या तुम मत्री बनना चाहते हो ?"

बेचारा पत्रकार ! वह घबरा गया और पीछे हटने लगा, लेकिन गाधीजी क्या उसे आसानी से जाने दे सकते थे ! बोले, "क्या कृपा करके भीख मागने के लिए आप अपना टोप मुझे नही दे देगे ?"

पत्रकार बन्धु ने तुरन्त अपना टोप सिर से उतारा और ।ेजी को दे दिया, लेकिन गांधीजी तो अपने विनोद को चरम ीमा पर पहुचा देने मे विश्वास करते थे। उन्होने वह टोप

लेकर तुरन्त उसके स्वामी के आगे किया और कहा, "हरिजनों के लिए कुछ दीजिये ।"

हँसी के ठहाको के बीच उस बेचारे पत्रकार ने चादी के कुछ सिक्के अपने ही टोप में डाल दिये । कैसा अद्भुत था यह अर्ध-नग्न भिखारी फकीर !

: ५८ :

यह पानी पीने योग्य नहीं है

डांडी-यात्रा के समय नमक बनाकर गाधीजी वापस डाडी की ओर लौट रहे थे। वह कार मे थे और मार्ग में महादेव देसाई का गाव पडता था । गाधीजी उनकी माताजी से मिलने के लिए कुछ क्षण वहां रुके । जब वह मिलकर लौटे तो किसीने पीने के लिए पानी मागा ।

तुरन्त एक ग्रामीण बन्धु एक लोटा जल और एक पीतल का कटोरा ले आये। इसी बीच में बहुत-से गाववालो ने गांधी-जी की कार को घेर लिया और उन्हे पैसे देने लगे । अप्पासाहब पटवर्धन कार के पास खड़े हुए थे। उनके एक हाथ में पानी का लोटा था और दूसरे में कटोरा था। वह उसमे पानी डालनेवाले ही थे कि सहसा उन्होने देखा कि एक स्त्री गाधीजी को एक रुपया देने के लिए उनके पास आने का प्रयत्न कर रही है, लेकिन आ नही पा रही है।

अप्पासाहब के दोनो हाथ घिरे हुए थे, इसलिए उन्होंने

अपना कटोरा उसके आगे कर दिया और स्त्री ने वह रुपया उसमे डाल दिया। अप्पासाहब ने उस रुपये को कार मे बिछे हुए रूमाल मे उलट दिया और फिर उस कटोरे को पानी से भरा।

ग्रीष्म ऋतु थी। गाधीजी सिर पर गीला तौलिया रखे हुए थे। जैसे ही अप्पासाहब ने पानी से भरा कटोरा प्यासे मित्र की ओर बढ़ाया, गाधीजी ने अपना तौलिया आगे करते हुए कहा, "पानी इसपर डाल दो।"

शोर इतना था कि अप्पासाहब कुछ सुन नही सके। अन्तिम वाक्य ही उनके कान मे पड़ा। गाधीजी कह रहे थे, "इस कटोरे में सिक्का पडा हुआ था। यह पानी पीने योग्य नही है।"

अब अप्पासाहब की समझ मे आया। उन्होने पानी फेक दिया और कटोरे को साफ करके पानी भरा।

गाधीजी बहुत दुखी हुए। एक कटोरा पानी बेकार चला गया। वह पीने योग्य नही था, लेकिन तौलिये को भिगोने का काम तो कर ही सकता था।

लिया करे।"

गाधीजी ने उत्तर दिया, "मै ऐसा करने के लिए बिलकुल तैयार नही हू। कड़ी धूप मे फावडा चलाने की आदत तुम्हे डालनी चाहिए। कल को यदि लडाई छिड़ गई और जेल जाना पडा तो वहा शीतल छाया मे बैठने को थोडे ही मिलेगा। वहा तो बहादुर मजदूर की तरह कमर तोडकर, कडाके की धूप मे फावडा चलाना पडेगा। अगर वहा तुम हार गये तो मेरी और तुम्हारी दोनो की नाक कट जायगी। इससे तो बेहतर है कि तुम पाठशाला छोडकर घर लौट जाओ। फिर निपट स्वार्थी बनना भी हम लोगो को शोभा नही देता। तुम यहा सब मजे मे बैठे पढ रहे हो और बुजुर्ग लोग सवेरे से हड्डिया गलाकर परिश्रम कर रहे है। हमे उनका साथ देना चाहिए। काम की पूर्णाहुति के समय सारी पाठशाला यदि उनकी मदद को पहुच जाय, तो उनको बहुत सतोष होगा। उनकी थकान भी दूर हो जायगी।"

: ६० :

ऐसे पापी का पाप मैं क्यों न देख सका ?

एक व्यक्ति के, जिसके लिए गाधीजी ने बडी जोखम उठाई, चरित्र के बारे मे उन्हे बडा विश्वास था, परन्तु उस व्यक्ति भीतरी जीवन बहुत ही मलिन मालूम हुआ। अत. गाधीजी

ने उसके लिए प्रायश्चित किया और यह आशा रखी कि कमजोरी के कारण उसमें जो मलिनता आ गई है, वह इससे नष्ट हो जायगी। परन्तु अन्त में उन्हे विश्वास हो गया कि उस व्यक्ति की मलिनता नष्ट नही हुई है। वह उन्हे चालाकी से धोखा देता है।

एक दिन सुबह के साढे दस बजे सब खाना खाने बैठे। रावजीभाई और गांधीजी सबको परोस रहे थे। रावजीभाई जब भोजनालय में गये तो पीछे-पीछे गांधीजी भी आये और बोले, "उसने आज भयकर झूठ बोला और मुझे कहना पड़ा कि अब दुबारा इस तरह जान-बूझकर झूठ बोलोगे तो मै चौदह दिन का उपवास करूंगा।"

इस बात को चौबीस घटे बीत गये। फिर वही समय, फिर वही अवसर। गांधीजी ने रावजीभाई से कहा, "उसने तो गजब कर दिया ! आज भी जान-बूझकर झूठ का प्रयोग किया। अब मुझे चौदह दिन का उपवास करना ही पडेगा।"

सुनकर रावजीभाई स्तब्ध रह गये। लेकिन गांधीजी ने उनसे कहा, "तुम खा लो। फिर मगनलाल और छगनलाल को बुला लाओ।"

रावजीभाई तुरन्त जाने लगे, लेकिन गांधीजी ने कहा, "मेरी आज्ञा है, तुम खा लो। तुममें से किसीको इस बारे में विचार नही करना चाहिए। किसीको मेरे साथ उपवास करके अपना नित्य-कर्म बिगाड़ना या उसमें त्रुटि नही करनी चाहिए।"

रावजीभाई ने तर्क किया, "परन्तु आप इस तरह हर किसी बात पर उपवास करे, इसका क्या अर्थ है ? हमारे पापों के लिए

आप क्यो उपवास करे ? आपके हृदय की छाया इतनी ठंडी है कि उसकी शीतलता मे भयकर जहरीला नाग भी पल सकता है। उसके पाप के कारण आप भूखो मरे, यह कहा का न्याय है !"

गांधीजी ने रावजीभाई के हृदय की पीडा को समझा। वह हँसे, और गम्भीर स्वर में बोले, "हर कोई झूठ बोले या मुझको धोखा दे, तो मुझे चोट नही लगती है। उसके लिए मै अपनेको दोषी नही मानता। चौदह दिन का उपवास करने का मैनें जो निश्चय किया है, वह किसीके पाप का प्रायश्चित करने की खातिर नही किया है, बल्कि कल मैने जो यह प्रतिज्ञा की थी कि अब दुबारा इस तरह तुम जान बूझकर झूठ बोलोगे तो मै चौदह दिन का उपवास करूगा, इस प्रतिज्ञा की खातिर मुझे उपवास करना पडेगा। परन्तु जिन्हे मै अपना मानता हूं, जिनपर मुझे विश्वास है, जिनके लिए मैने खतरे उठाये है, वही व्यक्ति झूठ बोले और मुझे धोखा दे तो इसमे मेरा ही पाप है। यह मुझे दीपक की तरह स्पष्ट दिखाई देता है। मुझमे पाप न हो तो ऐसे पापी का पाप मै क्यो न देख सका ! पत्थर और हीरे का फर्क जौहरी को करना आना ही चाहिए। अपने जिन आदमियो को मै मानता हू और अपने हृदय का प्रतिविम्ब समझता हू, उनमे यदि असत्य हो तो मुझमे असत्य होना ही चाहिए। यह मेरा जीवन है, इसके खातिर मै जीता हू। तुम्हे तो मुझे हिम्मत वधानी है। मै अशक्त हो जाऊ तव मेरी सेवा करना और इस तरह से काम करते रहना कि हमारे नित्य कार्य मे कोई ..मी न आये। मेरे पीछे उपवास करके मेरी मुश्किले वढाकर मुझे चिन्तातुर वनाना तुम्हारा कर्त्तव्य नही है।"

कूच पंद्रह जनवरी तक मुल्तवी रखा जाता है

दक्षिण अफ्रीका की यूनियन सरकार ने हिन्दुस्तानियों के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक कमीशन नियुक्त करने की घोषणा की। लेकिन इस संबंध में उसने हिन्दुस्तानियों से कोई राय नही ली। उनके प्रतिनिधि तो क्या होते, उनसे सहानुभूति रखनेवाले व्यक्तियों को भी नियुक्त नही किया गया था। ऐसी स्थिति में हिन्दुस्तानियों ने उस कमीशन का बहिष्कार करने का निर्णय किया। उन्होंने यह भी निश्चय किया कि सरकार की ओर से उनकी मांगों का आशाजनक उत्तर इसी महीने न मिल जाय तो १ जनवरी, १९१४ के दिन डरबन से ट्रांसवाल तक एक बड़ा कूच शुरू किया जाय।

इसी समय गांधीजी को कुमारी हॉब हाऊस नाम की महिला का एक तार मिला। लिखा था—"मेरी जैसी एक अबला की प्रार्थना पर अपना कूच १५ दिन के लिए स्थगित कर दीजिये।"

इस महिला ने अंग्रेज-बोअर-युद्ध के समय युद्ध-पीड़ित बच्चों और बहनों की स्तुत्य सेवा की थी। बोअर-जाति के बीच ही उसने अपना जीवन बिताया था। हिन्दुस्तानियों की बुरी अवस्था की कहानी सुनकर इस दयालु बहन का हृदय जल उठा। निजी तौर पर उन्होंने जनरल स्मट्स और जनरल बोथा से हिन्दु-स्तानियों के प्रश्न का निबटारा करने का आग्रह किया। उनसे

आश्वासन पाकर ही उसने गाधीजी को तार दिया।

गांधीजी उस तार से प्रभावित हुए। वह उस महिला से परिचित नही थे, लेकिन उसकी प्रतिष्ठा के बारे में वह जानते थे। ऐसी निर्मल, न्यायनिष्ठ, नीतिपूर्ण, सहृदय और वीर रमणी की मांग का निरादर करना उनको पसन्द नही आया। उन्होने अपने साथियो से सलाह की और फिर घोषणा की—"कूच १५ जनवरी तक मुल्तवी रखा जाता है।"

उन्होंने ऐसा करके प्रमाणित कर दिया कि सत्याग्रह में हठ के लिए कोई स्थान नही है। उसका आधार विवेक-बुद्धि है।

: ६२ :

देशभाई मेरे मालिक हैं

दक्षिण अफ्रीका मे जो अन्तिम समझौता हुआ था, उससे कई कारणो से मुसलमान भाई प्रसन्न नही थे। उनमे कुछ शरारती भी थे। वे जान-बूझकर झगडा करने के लिए असन्तोष फैलाने लगे, "गाधी तीन पौण्ड के कर के लिए ही लड़े। उसे उठवा दिया, परन्तु उसका लाभ केवल हिन्दुओ को ही मिला। गिरमिटिया मजदूरो मे अधिकाश हिन्दू ही है। मुसलमानो को कोई खास लाभ नही हुआ।"

इन बातो का परिणाम यह हुआ कि सन् १९०७ मे जैसा . ता।५२९। पैदा हो गया था, वैसा ही वातावरण अब जोहानिसबर्ग मे पैदा हो गया था। कुछ गुण्डे खुले आम गाधीजी को

मारने की बात करने लगे। इसकी सूचना गांधीजी को भी मिली। उस समय वह केपटाउन में थे। लोगों ने उनसे आग्रह किया कि वे जोहानिसबर्ग में न उतरकर सीधे नेटाल जायं, परन्तु गांधीजी ऐसे डरपोक नही थे। उन्होंने जोहानिसबर्ग जाने का निश्चय किया। वहां उनपर हमला हो और उनकी मौत हो जाय, तो भी वह सत्याग्रह के सिलसिले में ही होगी। ऐसी मौत तो वह चाहते ही थे। उन्हे लगा कि ऐसा हमला हो सकता है और उनकी मृत्यु भी हो सकती है। इस विचार से उन्होने फिनिक्स-वासियो के नाम एक महत्वपूर्ण पत्र लिखा। वह एक प्रकार से वसीयतनामा ही था। उसके बाद वह जोहानिसबर्ग चले गये। उनके स्वागत में वहां कई सभाएं हुई। एक दिन मुसलमान भाइयों ने भी एक सभा की और उन्हें बुलाया। कुछ लोगों ने उन्हे वहां न जाने की सलाह दी। लेकिन उन्होंने कहा, "मालिक नौकर को बुलाए और नौकर न जाय तो वह कितना उद्दण्ड और हरामी माना जायगा। देशभाई मेरे मालिक है। वे मुझे किसी भी समय बुलावे, मुझे जाना ही चाहिए।"

वह वहां गये। उनसे समझौते की बाते समझाने के लिए कहा गया। वह समझाने लगे तो बीच-बीच में प्रश्न पूछे जानें लगे। फिर धीरे-धीरे असभ्यता का प्रदर्शन होने लगा। एक समय ऐसा लगा कि अभी दगा हो जायगा। इतने में एकाएक एक महान क्रूर पठान हाथ में एक बड़ा-सा खुला हुआ छुरा लेकर सामने आ खडा हुआ। बोला, "खबरदार, कुछ बदमाश लोग गांधीभाई पर हमला करने को तैयार हैं, परन्तु यदि किसी ने उन्हे जरा भी नुकसान पहुंचाया, तो वह मेरे इस छुरे का

शिकार होगा।"

सिंह के समान खडे उस पठान की ओर देखकर गांधीजी हँसे और बोले, "भाई मीर आलम, इतना गुस्सा किसलिए? मेरे पास आओ। हम सभी भाई-भाई है। कोई मुझपर हमला नही करेगा।"

मीर आलम वही खडा रहा और गरजकर बोला, "आप तो फकीर है। आपको पता नही, मै सब जानता हू। आपपर अगुली भी उठानेवाले को मै खत्म कर दूगा।"

देखते-देखते वह तूफान शान्त हो गया। जो झगडा करने आये थे, वे एक-एक करके चले गये, लेकिन मीर आलम जबतक गाधीजी अपने डेरे पर नही पहुंच गये, बराबर उनके साथ रहा। यह वही मीर आलम था, जिसने एक दिन गाधीजी पर घातक हमला किया था।

: ६३ :

यह बात नीति की है

सन् १९२० तक अहमदाबाद मे मजदूरो को दिवाली पर बोनस देने का कोई अवसर नही आया था। इसलिए इस सबध मे कोई नियम भी नही बने थे। लेकिन प्रथम विश्वयुद्ध मे जब .ल ने अच्छा मुनाफा कमाया तो मजदूरो को भी इसका कुछ न . आने लगा। उन्होने बोनस की मांग की और इस माग के . स्वरूप उन्हें कुछ-न-कुछ मिलने भी लगा। वे हर महीने ऐसी

कुछ मिल जाय वही ले लेते है। इसमे आपके या अनुसूयाबेन के बीच मे पड़ने की जरूरत नही है।"

गाधीजी बोले, "यह बात नीति की है। मुझे बीच में पडना ही होगा। आप लोग गरीब है, इसलिए आपको पैसा मिले तो मुझे खुशी ही होगी, लेकिन आप अनुचित रीति से पैसे पाये, इसमें आपका हित नही है, और इसमें हम आपका साथ नही दे सकते। यदि आप इसी तरह आचरण करना चाहे तो मुझे आपके काम से अलग होना पड़ेगा और अनुसूयाबेन को भी अलग होने की सलाह देनी पडेगी।"

इसपर भी मजदूर नही माने तो गांधीजी और अनुसूयाबेन ने अपने पदो से इस्तीफा दे दिया और उन्होने मजदूरो से अपने कागजात और पैसे ले जाने के लिए कहा। लेकिन मजदूर-नेताओ ने कहा, "वहिया और पैसे आप अपने पास रहने दीजिये। यदि हम ले जायगे तो हममे जो अप्रमाणिक होगे वे इन्हे उडा देगे। इसलिए आप इस्तीफा भले ही दे, लेकिन सब सामान अपने पास रहने दीजिये।"

वे चले गये। लेकिन कुछ ही दिनो वाद कालुपुर मिल के मजदूरो को अपनी भूल समझ मे आ गई और उन्होने कहा, "हमारी भूल हुई। हम दुखी है। आपके बिना हमारा काम नही चल सकता। आप जेसा कहेगे वैसा ही हम करेगे।"

दूसरे क्षेत्र के मजदूरो ने उनका मजाक उड़ाया, लेकिन तीन ...ने वीतते-न-वीतते सभी मजदूर-नेता गाधीजी की वात को ... गये और इस प्रकार मजदूर-सघ पुनः गाधीजी के मार्ग-... के अनुसार अनुसूयावहन की अध्यक्षता मे चलने लगा।

गाधीजी को जब इस बात की सूचना मिली, तो वह बहुत नाराज हुए। सध्या के समय अली-बन्धुओ के स्वागत मे जो सभा हुई, उसमे बोलते हुए उन्होने मजदूरो को कड़े शब्दो मे धिक्कारा, कहा, "मजदूरो ने आज काम नही किया। ऐसा करके उन्होने अपनी नाक काट ली। वे मुझे धोखा नही दे सकते। हिन्दुस्तान में कोई भी आदमी मुझे धोखा नही दे सकता। मै हिन्दुस्तान को गुलामी से छुडाने का जी-तोड प्रयत्न कर रहा हू। मै मजदूरो की गुलामी मे नही फसूगा। आप लोग मिलो मे काम करके अली-बन्धुओ का उत्तम स्वागत कर सकते थे। कल का कडवा घूट तो मै जैसे-तैसे पी गया था, लेकिन आज का यह घूट पीना मेरे लिए असभव है। जितने घटे आप काम से दूर रहे, उतने घटो का काम पूरा कर दीजिये, उसीमे आपकी सज्जनता है।"

मौलाना मोहम्मद अली ने भी गाधीजी का समर्थन किया। अब तो मजदूरो का नशा जैसे उतर गया था। उन्होने नेताओ के वचनो को सिर आखो पर चढाया। वे तीन दिन तक गलत तरीके से गैरहाजिर रहे थे। उन्हे तीन दिन के तीस घटो का काम पूरा करना था। उन्होने एक महीने तक रोज एक घटा ज्यादा काम करके अपनी गलती का प्रायश्चित कर डाला।

: ६५ :

तुमने सत्य की अवहेलना की है

गांधीजी उन दिनों (१९२९) रेल द्वारा उत्तर प्रदेश का भ्रमण कर रहे थे। एक दिन सदा की तरह वह तीसरे दर्जे में बैठे हुए थे। उनका पौत्र काति गाधी भी उनके साथ था। गाडी तेज गति से चली जा रही थी, परन्तु गाधीजी अपने साप्ताहिक पत्रो 'यग इण्डिया' और 'नवजीवन' के लिए लेख लिखने में व्यस्त थे। सामने कागज-पत्र बिखरे पडे थे। उन्हीमें से किसी कागज के नीचे उनकी कलाई की घडी रखी हुई थी। सहसा उन्होने जानना चाहा कि समय क्या है? घडी दिखाई नही दी तो उन्होने काति से पूछा, 'क्या बजा है?"

घडी देखकर काति ने कहा, "पांच बजे है।"

तवतक गाधीजी की दृष्टि भी घड़ी पर चली गई। उन्होने देख लिया, पाच बजने में एक मिनट शेप है। उन्हे यह लापरवाही बहुत अखरी। लिखना बन्द करते हुए उन्होने काति की ओर देखा और कहा, "जरा ठीक तरह से देखो, क्या बजा है?"

इस बार कांति ने ध्यान से देखा और कहा, "पांच बजने मे एक मिनट बाकी है।"

अब गांधीजी बोले, "तुमने पहले क्या कहा था? ऐसा है तो फिर घडी रखने से क्या लाभ? तीस करोड़ मिनटों को

जोड़ो, देखो कितने महीने और कितनें दिन होते है ? अगर पाच की जगह एक मिनट कम पाच कहते तो क्या हो जाता ? तुमने सत्य की अवहेलना की है। ठीक नही किया। भविष्य मे ऐसी गफलत कभी न करना।"

: ६६ :

हिन्दुस्तान क्या भिखारी देश है ?

२ अक्तूबर, १९४७, गुरुवार का दिन, गांधीजी का अन्तिम जन्म-दिन।

वह बिरला हाऊस दिल्ली मे ठहरे हुए थे। सदा की भांति साढे तीन वजे प्रार्थना के लिए उठे। घर के और लोग भी प्रार्थना के लिए आ पहुचे। सवने वारी-वारी गाधीजी के पैर छुए। मनु हँस कर वोली, "यह कहा का न्याय है! अपने जन्म-दिन पर तो हम सवके पैर छूते ही है। आपके जन्म-दिन पर भी उल्टे हमे ही आपके पैर छूने पड रहे है।"

गांधीजी वोले, "हा, महात्माओ के लिए हमेशा उलटा ही नियम रहता है। तुम सवने मुझे महात्मा वना दिया है न! फिर मै झूठा महात्मा ही क्यो न होऊ, लेकिन हमारा कायदा यह है कि 'महात्मा' शव्द आया और सव हो गया। उसका -झूठापन देखने की जरूरत नही है।"

उन दिनो गाधीजी अस्वस्थ थे, लेकिन फिर भी प्रार्थना के द सोए नही। हरिजन-पत्रो के लिए लेख लिखने वैठ गये।

खांसी बहुत परेशान कर रही थी। डाक्टरों ने उन्हे पेंसिल न लेने की सलाह दी थी, लेकिन गाधीजी का वही उत्तर था, "मेरा राम नाम कहां गया ? अगर राम-नाम दिल में उतर जाय तो खांसी कल ही चली जाय। अगर तीन हफ्ते रही तो मैं सारे संसार से कहने के लिए तैयार हू कि मेरा राम-नाम झूठा है।"

डाक्टर कहते, "यह सब ठीक है, लेकिन विज्ञान ने इतनी खोज की है। उसे आप गलत कैसे कह सकते है ? आप चाहे जितनें दिल से रामनाम लेनेवाले लाइये, मै उनमें हैजा फैला सकता हू।"

गांधीजी फिर वही उत्तर देते, "यह उद्दण्डता है। विज्ञान को अभी बहुत खोज करनी बाकी है। रामनाम अगर श्रद्धा से लिया जाता हो तो दुनिया मे कोई बीमार पड़ ही नही सकता। इतने स्वच्छ, निष्पाप दुनिया के लोग बन जायं तो मुझे यकीन है कि किसी को कोई बीमारी ही न हो। कल आप अगर मुझे लिवर खिलाये या लिवर एक्सट्रेक्ट का इजेक्शन दे तो क्या मुझे विदेश की बनी चीजे लेनी चाहिए ? हिन्दुस्तान बड़ा आलसी देश है। डाक्टर लोग तो सबसे वड़े आलसी है। वे अपने देश मे कुछ नही बना सकते। हिन्दुस्तान क्या भिखारी देश है ? यहां कुदरत सबकुछ देती है, फिर भी हमें भीख मागनी पड़ती है। जब मुझे इन वातों का खयाल आता है तो बहुत दुख होता है। मैने तो बहुत किया है। अब कुछ करने की इच्छा नही होती है। अब तो जी चाहता है, इस दुनिया से चला जाऊ और वह भी राम-राम करते हुए। राम नाम मे कितना रहस्य भरा हुआ है, यह मै आप लोगो को समझा नही सकता। आज तो मै आवे मे

बैठा हूं। चारो ओर आग जल रही है। आप डाक्टर लोग जैसे विज्ञान की खोज करते है, वैसे ही मैं राम-नाम की खोज करता हू। कर सका तो ठीक, नही तो खोजते-खोजते मर जाऊगा। आप मुझे २ अक्तूबर के निमित्त प्रणाम करने के लिए आये है। यह आपके प्रेम की निशानी है। लेकिन अब तो चाहता हू कि या तो अगली चर्खा बारस तक मै यह आग देखने के लिए जिन्दा न रहूगा या हिन्दुस्तान बदल गया होगा। इसलिए मेरी लम्बी उम्र के लिए प्रार्थना करने के बजाय, मै जैसी प्रार्थना करता हू, वैसी ही आप भी कीजिए।"

संदर्भ

इस पुस्तक के प्रसंग जिन पुस्तको से सम्पादित रूप में लिये गए हैं, उनकी संख्या लेखको के नाम सहित साभार नीचे दी जा रही है .

अकालपुरुष गाधी (जैनेन्द्रकुमार) २६

इग्लैड मे गाधीजी (महादेव देसाई) ४३

एकला चलोरे (मनुबहन गाधी) ५२

ए गाधियन पेट्रियार्क (माधोप्रसाद) ५०

गाधी अभिनदन ग्रथ (सर्वपल्ली राधाकृष्णन्) ३३

गाधी मार्ग (जन० १९६९) रामेश्वरदयाल दुबे १, ३६

गाधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव (सकलन) श्रीमन्नारायण ११

" " " (सकलन) कुमारी म्यूरियल लेस्टर ३१

गाधी शताब्दी पारिजात स्मारिका (सकलन) मदनमोहन पाडे ३०

गाधी : सस्मरण और विचार (सकलन) ३२

गाधीजी (सपा० जी० डी तेदुलकर) २५, ३५, ५५, ५७, ५८

गाधीजी और मजदूर प्रवृत्ति (शकरलाल बैकर) ६३

गाधीजी की देन (डा० राजेन्द्रप्रसाद) २८

गाधीजी की यूरोप-यात्रा (मि० म्यूरियल लेस्टर) ४४

गाधीजी की साधना (रा० म० पटेल) ६०, ६१, ६२

गाधीजी के जीवन-प्रसग (सकलन) घनश्यामदास विडला २९

गाधीजी के सपर्क मे (स० चन्द्रशकर शुक्ल) ३७, ३८

जीवन प्रभात (प्रभुदास गाधी) ५९

दीदी (मार्च १९४८) सत निहालसिह २

बापू मेरी मा (मनुबहन गाधी) ६६
बापू-स्मरण (सकलन) ४५, ४६, ४७, ४८
बापू की कारावास-कहानी (सुशीला नैयर) २७
बापू की छाया मे (बलवतसिह) ५१
बापू की झाकिया (काका कालेलकर) ४१
बापू की मीठी-मीठी बाते (साने गुरुजी) १२, १४
बापू की विराट वत्सलता (काशिनाथ त्रिवेदी) ४०
बापू के चरणो मे (ब्रजकृष्ण चादीवाला) ४२
बिहार की कौमी आग मे (मनुबहन गाधी) ४
महादेवभाई की डायरी भाग १ (महादेव देसाई) ३४
" " भाग २ (" ") ८, ३९
" " भाग ३ (" ") ५, ६, १०
" " भाग ४ (" ") ३, ९
मेरे हृदयदेव (हरिभाऊ उपाध्याय) १३, ५६
युग-प्रभात (अक्तूबर १९६९) सिद्धवन हलिल कृष्ण शर्मा २०, २१
रेमजे सेसिज (सकलन) काति गाधी ६५
हरिजन सेवक (सपा० महादेव देसाई) १५, १६, १७, १८ १९, २२, ५३
हरिजन-सेवा (नव०-दिस० १९६९) प्रो० मलकानी ४९
हिन्दी नवजीवन (१९२७) २३, २४, ५४